❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ५ | गौराब्द ४७३, मास—दामोदर २, वार—वासुदेव
रविवार, ३१ आश्विन, सम्वत् २०१६, १८ अक्टूबर | संख्या ५

अनुराग-वल्ली

[श्रील-विश्वनाथ-चक्रवर्त्ति-ठक्कुर-विरचिता]

देहार्बुदानि भगवन् ! युगपत् प्रयच्छ वक्त्रार्बुदानि च पुनः प्रतिदेहमेव ।
जिह्वार्बुदानि कृपया प्रतिवक्त्रमेव नृत्यन्तु तेषु तव नाथ ! गुणार्बुदानि ॥१॥

किमात्मना ? यत्र न देहकोट्यो देहेन किं ? यत्र न वक्त्रकोट्यः ।
वक्त्रेण किं ? यत्र न कोटि जिह्वाः किं जिह्वया ? यत्र न नामकोट्याः ॥२॥

आत्माऽस्तु नित्यं शतदेहवर्त्ती देहस्तु नाथास्तु सहस्रवक्त्रम् ।
वक्त्रं सदा राजतु लक्षजिह्वं गृह्णातु जिह्वा तव नामकोटीम् ॥३॥

यदा यदा माधव ! यत्र यत्र गायन्ति ये ये तव नामलीलाः ।
तत्रैव कर्णार्बुदधार्यमाणा-स्तास्ते सुधा नित्यमहं धयानि ॥४॥

कर्णार्बुदस्यैव भवन्तु लक्षकोट्यो रसज्ञा भगवंस्तदैव ।
येनैव लीलाः शृणुयानि नित्यं तेनैव गायानि ततः सुखं मे ॥५॥

कर्णायुतस्येक्षणकोटिरस्या हृत्कोटिरस्या रसनार्बुदं स्यात् ।
श्रुत्वैव दृष्ट्वा तव रूपसिन्धु-माहात्म्य माधुर्यमहो ! धयानि ॥६॥

नेत्रार्बुदस्यैव भवन्तु कर्णनासारसज्ञा हृदयार्बुदस्वा ।
सौन्दर्य-सौस्वर्य-सुगन्धपुर माधुर्य-संश्लेष-रसानुभूत्यै ॥७॥

त्वत्पार्श्वगत्यै पदकोटिरस्तु सेवाः विधातुं मम हस्तकोटिः ।
तां शिक्षितुं स्तादपि बुद्धिकोटि-रेतान् वरान्मे भगवन् ! प्रयच्छ ॥८॥

अनुवाद—

हे भगवन् ! आप कृपा कर मुझे एक साथ अरबों शरीर दीजिये और उनमें से प्रत्येक शरीरमें अरबों मुख और प्रत्येक मुखमें एक-एक अरब रसनाएँ प्रदान कीजिये । हे प्रभो ! दूसरी प्रार्थना यह है कि मेरी उन अरब रसनाओं पर आपकी अरबों गुणावलियाँ सदा-सर्वदा नृत्य करती रहें ॥१॥

हे प्रभो ! जिस शरीरमें करोड़ों-करोड़ों शरीर नहीं हैं, वैसे शरीरकी क्या अवश्यकता है ? जिस शरीरमें करोड़ों मुख नहीं हैं, वैसे शरीरकी क्या जरूरत है ? जिस मुखमें करोड़ों रसनाएँ नहीं हैं, वैसे मुखसे क्या लाभ है ? एवं जिस रसनाके ऊपर तुम्हारे 'हरे कृष्ण' आदि करोड़ों नाम विराजमान नहीं रहते, वैसी रसना किस काम की ? अतएव आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरे करोड़ों शरीरोंमें करोड़ों मुख हों, उन करोड़ों मुखोंमें करोड़ों रसनाएँ हों और उन करोड़ों रसनाओं पर सर्वदा आपके करोड़ों नाम नृत्य किया करें ॥२॥

हे नाथ ! दूसरी प्रार्थना यह है कि मेरी आत्मा सैकड़ों शरीरोंमें व्याप्त होकर विद्यमान रहे, प्रत्येक शरीरमें हजार-हजार मुख हो जाँय तथा मेरे शरीरमें लाखों रसनाएँ सर्वदा विराजमान हों, जो निरन्तर आपके नाम-समूहका कीर्तन करती रहें ॥३॥

हे राधानाथ ! मेरी प्रधान प्रार्थना यह है कि आपके जो-जो भक्तजन जिस-जिस समय आपके श्रीविग्रहके निकट अथवा जहाँ कहीं भी आपके नाम और आपकी लीला-कथाओंका कीर्त्तन करें, मैं उन सभी स्थानोंमें उपस्थित होकर करोड़ों कर्णोंसे उस लीला-सुधाका निरन्तर पान कर सकूँ ॥४॥

जिस समय करोड़ों कर्णोंसे आपके नाम और लीला-सुधाका पान करूँ, उस समय मेरे करोड़ों कर्णोंमें लाख करोड़ रसनाएँ हो जाँय, जिससे करोड़ों कर्णों द्वारा आपकी मधुर लीला-कथाओंका श्रवण करते-करते और लाख करोड़ रसनाओं द्वारा आपकी लीला-कथाओंका कीर्तन करते-करते परमानन्दमें विभोर हो जाऊँ ॥५॥

उन करोड़ों कानोंके करोड़ों नेत्र, करोड़ों नेत्रोंके करोड़ों हृदय, करोड़ों हृदयोंकी करोड़ों रसनाएँ हों । हे प्रभो ! उन करोड़ों कर्णोंसे आपके रूप-सागरकी महिमाका श्रवण करूँ, करोड़ों नेत्रोंसे उस रूपका दर्शन करूँ, करोड़ों हृदयोंमें उस रूपका आलिंगन करूँ और अर्बुद रसनाओंसे उसका माधुर्य पान करूँ ॥६॥

हे प्रभो ! आपकी रूपमाधुरीका पान करनेके लिये मेरे करोड़ों नेत्र हों, आपकी सुमधुर कण्ठ-ध्वनिका श्रवण करनेके लिये मेरे अरबों कर्ण हों, आपके श्री-विग्रहके सौरभ-समूहको ग्रहण करनेके लिये करोड़ों नासिकाएँ, माधुर्य-रसानुभूतिके लिये करोड़ों रसनाएँ, तथा आपके आलिंगन-रसको अनुभव करने लिये मेरे करोड़ों हृदय हों ॥७॥

हे भगवन् ! मुझे यह वरदान दीजिये कि आपके समीप गमन करनेके लिये मेरे करोड़ों पैर हों, आपकी आराधना करनेके लिये मेरे करोड़ों हाथ हों और आपकी सेवाकी शिक्षा ग्रहण करनेके लिये मेरी करोड़ों बुद्धियाँ हों ॥८॥

संत (सज्जन) के लक्षण

षड्गुण विजयी---१६

षड्गुण कहनेसे भूख, प्यास, लोभ, मोह, जरा और मृत्यु, इन छः विरोधी गुणोंका बोध होता है। कोई-कोई काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मात्सर्य-को ही षड्गुण कहते हैं।

उपरोक्त छः गुण अनात्माके धर्म हैं। अनात्मा कहनेसे शरीर और मनका बोध होता है। जिस समय चेतनवृत्ति अथवा आत्मवृत्ति जड़ या अनात्म अनुशीलनमें व्यतिव्यस्त रहती है, उस समय वैसी चेतनताको 'मन'की संज्ञा दी जाती है। मन अह-ङ्कारकी सहायतासे जड़-पदार्थोंमें ममताका आरोप करता है। प्रकृतिके राज्यमें तीन प्रकारके गुणोंका प्रभुत्व दिखलाई पड़ता है। गुणोंसे ही समस्त प्रकारके अनित्य कर्मोंका उद्भव होता है। चेतन वृत्ति गुणोंसे आच्छादित होने पर कर्मफलका भोक्ता हुआ जाता है। जिस समय मन कर्मफलके अधीन रहता है, उस समय उसे षड्गुणके अधीन कहा जाता है। कर्मफलसे रहित होने पर अथवा कर्मकाण्डका परि-त्याग करने पर वह साधु हो सकता है। त्रिगुणातीत महापुरुष छः गुणोंके अधीन नहीं होते।

संतजन और कर्मफल-भोगी मनुष्य—जड़दर्शन द्वारा एक ही जैसे दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु दोनोंमें आकाश-पातालका भेद है। आत्मविद् संतजन भगवदाश्रयपूर्वक भोगोंसे सर्वथा निर्लिप्त रहते हैं, उनकी वृत्ति सर्वदा हरि सेवामयी होती है। परन्तु कर्मी और ज्ञानी दोनों प्रकारके मनुष्य छः गुणोंके अधीन रहनेके लिये बाध्य हैं। उनमें विषय-भोगकी वासना बड़ी प्रबल होती है। यह भोग-प्रवृत्ति मनुष्य-को हरि-सेवासे वंचित रखती है। कृष्णैकशरण होने पर भोग-प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है और उसके स्थान पर हरिसेवा-प्रवृत्ति विराजित हो पड़ती है। ऐसी दशामें कोई भी जड़ीय प्राकृत विकार उसे स्पर्श नहीं कर सकता।

अतएव श्रीमद्भागवत अर्थात् पारमहंस्य-संहिता-में सज्जन पुरुषोंको विजित-षड्गुण कहा गया है। विजित षड्गुण होने पर बद्धजीव भी सज्जन अर्थात् संत हो जाते हैं।

मितभूक् अर्थात् मिताहारी---१७

भगवत्-प्रसाद भोजन करनेवाला ही यथार्थ मिताहारी है

आवश्यकतासे अधिक नहीं या आवश्यकतासे न्यून नहीं—ऐसी अवस्थाको 'परिमित' कहा जाता है। संत (सज्जन) परिमित आहार करते हैं। जो लोग परिमित भोजन नहीं करते, वे वैष्णव होने में असमर्थ हैं। सज्जन व्यक्ति अप्राकृत इन्द्रियोंसे अप्राकृत बुद्धि द्वारा अप्राकृत वस्तुका भोजन करते हैं। वे कभी भी अमेध्य—अपवित्र पदार्थ भोजन नहीं करते। साथ ही मायावादियोंकी तरह वे फल्गु-वैराग्य (देखावटी वैराग्य) भी नहीं करते एवं हठयोगीकी तरह महाप्रसादका तिरस्कार भी नहीं करते। वे परिमित रूपमें कृष्णप्रसाद भोजन करते हैं।

प्राकृत शुद्धाशुद्ध भोजन-मितभोजन नहीं है

भगवत्-प्रसाद सेवामें अमित भोजनका कोई

प्रश्न ही नहीं है। सूक्ष्म शरीर अर्थात् मनसे जो भोजन किया जाता है, वह अनित्य होता है। शुद्धाशुद्धिका विचार कर शरीर द्वारा जो भोजन किया जाता है, वैसा भोजन वैष्णवोंके लिये निषिद्ध है। सज्जन पुरुषोंके नित्य स्वभावमें मितभोजनका एक विशिष्ट स्थान है।

किसी भी चीजकी अधिकता या न्यूनता परमार्थ पथमें बाधक है

श्रीमद्भागवतमें अत्यन्त आसक्त अपरिमित भोजनकारी एवं भोजनका परित्याग करनेवाले विरक्त दोनों प्रकारके लोगोंको भक्तिके लिये अनुपयुक्त बतलाया है। भक्तिरसामृत सिन्धुमें भी लिखा है—'आधिक्ये न्यूनतायाञ्च च्यवने परमार्थतः।' कर्मी, ज्ञानी और शुष्क वैरागी, ये लोग मिताहारी नहीं हैं।—

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः।
जनसंगश्च लौल्यञ्च षड्भिर्भक्तिर्विनश्यति॥

अर्थात्, किसी वस्तुका अधिक संग्रह या संचय, प्राकृत विषयोंके लिये बृतेसे अधिक परिश्रम अथवा प्रयत्न, आवश्यकतासे अधिक नियमोंके प्रति आग्रह अथवा नियमोंका अपालन, कृष्ण-विमुख व्यक्तियोंका सङ्ग और चित्तकी चंचलता—इन छः दोषोंसे भक्ति नष्ट हो जाती है।

मांसाहारी और मादक द्रव्यों का सेवन करने वाले व्यक्ति सज्जन नहीं है

सज्जन पुरुषको जिह्वा और उदर वेगका दमन करना कर्त्तव्य है। जो लोग लोभके कारण अधिक आहार करते हैं अथवा प्रतिष्ठाके लिये कृष्ण-प्रसादका अनादर करते हैं, वे सज्जन नहीं हो सकते हैं। मांस-मछली, अण्डे आदि भोजनकारी मिताहारी नहीं कहे जा सकते हैं। मादक-द्रव्योंका सेवनकारी भी मिताहारी नहीं कहा जा सकता। गोस्वामी महात्मा पुरुष अफीम, गाँजा आदिका सेवन नहीं करते। इनका चरित्र और स्वभाव बड़ा ही निर्मल होता है।

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

कृष्णदास्य कैसे प्राप्त हो ?

सत्सङ्गका महत्व

बद्धजीव त्रिगुणमयी माया द्वारा मोहित होकर कृष्णदास्य भूल जाता है और अविद्यामय संसारमें बार-बार जन्मता और मरता रहता है। उसका यह चक्कर तबतक चलता रहता है, जब तक वह अपने वास्तविक स्वरूप कृष्णदास्यको प्राप्त नहीं कर लेता। परन्तु ऐसा तभी सम्भव है जब कि उसे सत्सङ्ग प्राप्त हो। जीवको जबतक सत्सङ्ग नहीं प्राप्त होता, तबतक वह काम-क्रोध आदिके अधीन हुआ आध्यात्मिक आदि त्रितापकी ज्वालासे दग्ध होता रहता है। चैतन्यचरितामृतमें सत्सङ्गको भक्तिका उद्गम स्थान बतलाया गया है—

कृष्णभक्ति जन्ममूल हय साधुसङ्ग।
कृष्ण-प्रेम जन्मे तिहों पुनः मुख्य अङ्ग॥

श्रीनाम सर्वश्रेष्ठ साधन हैं एवं नाम और नामी अभिन्न हैं

सत्सङ्ग मिलने पर जीव श्रीहरिनाम ग्रहण करते हैं। श्रीनाम समस्त साधनोंका सार है। नाम रसका आस्वादन करनेके लिये हमारे प्राण-सर्वस्व

श्रीमन्महाप्रभु जगदाचार्यके रूपमें अवतीर्ण हुए थे तथा अपने परिधान-वस्त्र पीताम्बर जैसी राधाकान्ति ग्रहण कर "नाम ही एकमात्र उपाय है, नाम ही एक मात्र उपाय है"—यह शिक्षा देकर जीवको कृष्णदास्य-की ओर आकर्षित किया है। नामभजनकारी व्यक्ति नामके जो अनुकूल हो उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं करेंगे।

अपराध-शून्य नामद्वारा प्रेमकी प्राप्ति

नामके प्रतिकूल भाव अपराध कहलाते हैं। नामापराधका सर्वथा परित्याग करना चाहिए। कृष्ण ही मेरे एकमात्र रक्षक और पालक हैं—इस अनन्य भावको दृढ़तापूर्वक ग्रहण करना चाहिए। जब तक स्वरूप-भ्रमरूप अनर्थ दूर नहीं हो जाता है, साधक तब तक भजनके योग्य नहीं होता। स्व स्वरूपका बोध होने पर सम्बन्ध ज्ञानका उदय होता है। क्रमशः अभिधेय रूपसे भजन करते-करते प्रयोजन रूप प्रेम-धनकी प्राप्ति होती है।

सद्गुरुके बिना कृष्णदास्य प्राप्त होना असम्भव है

सद्गुरु आश्रय कर सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन—इन तीन तत्त्वोंका ज्ञान लाभ किये बिना यथार्थ कृष्णदास्य प्राप्त करना कठिन ही नहीं असंभव है। जो लोग एकान्त मनसे कृष्णदास्यको प्राप्त करना चाहते हैं, करुणामय भगवान् उनकी मनोभिलाषा अवश्य ही पूर्ण करते हैं।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकं।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

षड्रिपुओंका सद्व्यवहार

जो लोग भक्त होना चाहते हैं, उनको श्रीचैतन्य महाप्रभुके बतलाये मार्गका अनुसरण कर भजन करना चाहिए। ऐसा होने पर शीघ्र ही सर्व-सिद्धियाँ प्राप्त हो जायगीं। पहलेके दुष्ट भाव, काम, क्रोध आदि सभी वशीभूत हो जाते हैं। ऐसी दशामें भक्त कर्मको कृष्णसेवामें, क्रोधको नामापराधीके प्रति, लोभको साधु सङ्गमें कृष्णलीलाके आस्वादनमें, मोहको श्री-कृष्णके माधुर्यमें, दंभको—मैं जैसे भी हो अखिल विश्वको एक तरफ रखकर सत्सङ्गमें कृष्ण-भजन करूँगा ही करूँगा—ऐसी दृढ़तामें लगाकर कृष्ण-भजनमें तत्परतासे लग जाते हैं।

नामानन्दसिन्धुके सामने ब्रह्मानंद एक बूँदके समान है

वास्तवमें जीवके लिये कृष्णभजनसे ऊँचा और कोई भी सुख नहीं है। कृष्णनामानन्दमें कितना सुख है—यह वही समझ सकता है, जो इसे पा चुका है। नामानन्द-सिन्धुकी तुलनामें ब्रह्मानन्द एक बूँद जलके समान अतीव क्षुद्र है। निरपराध होकर कृष्णनाम करनेसे उस रससिन्धुका आस्वादन किया जा सकता है। नामरससिन्धुके समीप कर्मयोग एक अन्धकूपके समान है। समस्त प्रकारकी उपासनाओंका परित्याग कर अनन्य भावसे नाम-भजनमें तत्पर यथार्थ संतोंका सङ्ग संसारमें सबसे दुर्लभ है। जिसे यह प्राप्त हो गया उसके लिये कृष्ण-प्रेम अतीव सुलभ हो जाता है।

निरपराध होकर कृष्णनाम ग्रहण करनेसे कृष्ण-प्रेम अवश्य ही प्राप्त होता है। श्रीमन्महाप्रभु और उनके भक्त महाजनोंकी बातों पर विश्वास करना ही धर्म है। कुछ दिनों तक अनन्य भावसे भजन किये बिना ही प्रेम-धन पानेकी आशामें धैर्य छोड़ देनेसे नाना प्रकारकी विघ्न-बाधाएँ पड़नी आरम्भ हो जाती हैं। बुद्धिमान व्यक्ति निराश नहीं होते। वे तब तक दृढ़तापूर्वक कृष्ण-भजनमें लगे रहते हैं, जब तक उन्हें कृष्ण-प्रेम प्राप्त नहीं हो जाता। साधनमें परिपक्वता होने पर क्रमशः उन्नति होती है और अंतमें प्रेम-धन पाया जाता है—श्रीमन्महाप्रभुकी यही आज्ञा और शिक्षा है।

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीविग्रह और मठ-मंदिर

श्रीश्री आचार्यदेवके भाषणसे

[पूर्व प्रकाशित वर्ष ५, संख्या ४, पृष्ठ–८८ से आगे]

दादू, कबीर और नानक आदि कतिपय निराकारवादियोंके विचार

दादू, कबीर, नानक, दयाल और राधास्वामी आदि कतिपय निराकार पन्थी हमारे देशमें सुन्दर शरीर में दादकी तरह कहीं-कहीं पाये जाते हैं, परन्तु इन लोगों ने जिन-जिन सम्प्रदायोंका गठन किया है, भारतमें उनकी प्रसिद्धि बहुत ही कम है। ये लोग मूर्त्तिपूजा स्वीकार नहीं करते; यहाँ तक कि भगवान्‌का सच्चिदानन्द विग्रह तक नहीं मानते । किसी-किसी ऐतिहासिकके मतानुसार दादू साहेब आजसे लगभग ६०० वर्ष पूर्व,कबीर ५७६ वर्ष पूर्व,और नानक साहेब ४६० वर्ष पूर्व पैदा हुए थे। इन सबने हिन्दुओंके सनातन वैदिक धर्मकी अर्थात् हिन्दूधर्मकी विरोधिता की है। इनका कहना है—ईश्वरका कोई आकार नहीं है और मूर्त्तिपूजक भ्रान्त हैं। कबीर पन्थी और नानक-पन्थी साधारणतः 'सन्त मत' के नामसे परिचित हैं। वे लोग अपने गुरु-वर्गको 'सन्तगुरु' अथवा 'दयालगुरु' कहते हैं। आजकल इन सम्प्रदाओंके जैसे आचार-विचार दिखलाई पड़ते हैं, उससे उनको 'सन्त-सम्प्रदाय' या 'दयाल-सम्प्रदाय' न कह कर 'असन्त' या 'निर्दय' सम्प्रदाय कहना अयुक्ति संगत न होगा।मेदिनीपुर (बंगाल) के शैलेन्द्र नारायण घोषाल नामक एक व्यक्तिके 'आलोकतीर्थ' नामक एक ग्रन्थको पढ़कर हमलोग ऐसा मन्तव्य करनेको बाध्य हुए हैं । उन्होंने हिन्दूधर्मके प्रति जैसा कटु-कटाक्ष किया है, उसे देखकर अत्यन्त आश्चर्य होता है। हमने घोषाल महोदयका 'आलोकतीर्थ' नामक ग्रन्थ देखा है। उस ग्रन्थके प्रत्येक पृष्ठमें असंख्य भूलें हैं, असम्बन्ध विचार हैं तथा युक्ति और शास्त्र-विरुद्ध सिद्धान्त हैं। हम इसे समयानुसार दिखलावेंगे। वास्तवमें वह 'आलोक तीर्थ' नहीं—'अंधकार-गर्त्त' है। मैंने पहले ही बतलाया है कि बौद्धों और ईसाइयोंका उच्छिष्ट भोजन कर रामकृष्ण-मिसन और भारतसेवाश्रमने धर्मका जैसा विचार-प्रवाह भारतमें प्रवाहित किया है, उससे हमारे देशके भ्रातृवृन्द वैदिक सनातन धर्मको छोड़कर ईसाई, मुसलमान, बौद्ध, जैन, आर्यसमाजी, कबीर पन्थी, नानक पन्थी आदि निराकारवादियोंके नास्तिक्य-धर्ममें प्रवेश कर रहे हैं। शैलेन्द्र नारायण घोषाल इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। इन्होंने हिन्दू-समाजकी 'घोषाल' उपाधिका परित्याग नहीं किया है, परन्तु सन्त-पन्थ अर्थात् कबीर-पन्थ ग्रहण किया है, ठीक उसी तरह जैसे Converted ईसाइयोंके Alfred Bose (आल्फ्रेड-बोस) आदि नाम होते हैं। काला पहाड़की तरह हिन्दूधर्मका त्याग करनेसे हिन्दू-देव-देवियोंकी मूर्त्तियोंको तोड़ना ही आवश्यक जान पड़ता है। इन कालापहाड़ द्वितीय अर्थात् शैलेन घोषालकी हिन्दू-धर्मकी विरोधिताका कठोर प्रतिवाद करनेके लिये विभिन्न स्थानोंकी धार्मिक जनताने मुझसे अनुरोध किया है। मैं उनके इस साधु अनुरोधकी रक्षा करने में कोई कसर उठा न रखूँगा। मैं इस विषयमें आज आपका अधिक समय नष्ट नहीं करना चाहता। मेरा अनुरोध है—आप लोग 'आलोकतीर्थ' उर्फ 'अन्धकार-गर्त' का कभी भी अध्ययन न करें। शैलेन घोषाल धर्म-प्राण मेदिनीपुरके कलंक स्वरूप हैं। वे पागलोंकी तरह कहना चाहते हैं कि भारतवर्षमें निरा-

कार नास्तिकोंकी ही संख्या अधिक है। वास्तवमें उनका कथन सर्वथा असत्य है। भारतवर्षमें मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी, आर्य-समाजी, कबीर-पन्थी, नानक-पन्थी, दादूपंथी, राधास्वामी, ब्राह्मसमाजी आदि विभिन्न मूर्त्तिपूजा-विरोधी दल होने पर भी इन सबकी संख्या नगन्य है। भारतकी जन-गणनाके इतिहाससे यह बात स्पष्ट प्रमाणित है। इसके अतिरिक्त निराकारवादी चाहे जितना भी उन्नत क्यों न हों भारतीय हिन्दू-समाज इन्हें अछूत की श्रेणीमें ही गणना करता है। और तो क्या हिन्दू-समाज इनका स्पर्श किया हुआ जल भी ग्रहण नहीं करता। मालूम होता है शैलेन घोषालके सन्त-पंथी हो जानेके कारण उनके आत्मीय-स्वजनोंने उनका बहिष्कार कर दिया है, इसीलिये उन्होंने बिगड़ कर पाषण्डीकी तरह 'आलोक तीर्थ' के नामसे 'अन्धकार-गर्त्त' की रचना की है। श्रीचैतन्यचरितामृत में निराकारवादियोंको अस्पृश्य और पापी बतलाया गया है—

श्रीविग्रह ये ना माने सेई त पाषण्डी।
अस्पृश्य, अदृश्य सेई हय यमदण्डी॥

आज पाँच सौ वर्षोंसे हिन्दू समाज चैतन्य-चरितामृतकी इस शिक्षाका अक्षरशः पालन करता आ रहा है। मालूम होता है, मूर्त्ति, प्रतिमा और विग्रह में क्या भेद है—इसे शैलेन घोषाल नहीं जानते। वे विग्रह और प्रतिमाको एक मानते हैं। जिन्हें मुसलमान धर्ममें रुचि हो जाती है, उनको उपरोक्त विग्रह और प्रतिमाका भेद समझ नहीं पड़ता है।

भारतमें नास्तिक सम्प्रदायोंकी परिणति

'निर्दय देश' को 'दयाल देश' केवल शैलेन घोषाल एवं उनके दलवाले लोग ही कह सकते हैं, कोई भी स्थिर बुद्धि, सुशिक्षित व्यक्ति कदापि ऐसा नहीं कह सकता है। उनका 'दयाल देश' नितांत प्राकृत देश है—रक्त, माँससे गठित पांचभौतिक स्थान मात्र है। मैं 'आलोकतीर्थ' या 'अन्धकार-गर्त' शीर्षक प्रबन्धमें इस विषयकी विस्तारसे समालोचना करूँगा। संसारमें भिन्न-भिन्न प्रकारके नास्तिक स्वेच्छापूर्वक विचरण कर रहे हैं। प्राचीन-कालमें चार्वाक जैसे कुतार्किक स्वभाववादी, समय-वादी, प्रकृतिवादी, भौतिकवादी आदि बहुतसे नास्तिक हो गये हैं। इन सबकी विचार-धारा अपौराणिक, शास्त्र-विरुद्ध एवं अयुक्ति-संगत है। श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत गोस्वामियोंने चार्वाक जैसे सभी कुतार्किकोंको तर्क-युद्धमें हराकर उनकी जिह्वा और लेखनी दोनोंको बंद कर दिया है। यद्यपि यह बात सत्य है कि तर्ककी प्रतिष्ठा नहीं है, तौभी भगवत्ताकी स्थापनामें युक्ति और तर्क सर्वदा आदरणीय हैं। तर्क द्वारा ईश्वर-तत्त्व स्थापित नहीं होने पर भी ईश्वरमें अविश्वास रखनेवाले नास्तिकोंकी मूर्खता सिद्ध करनेमें तर्क सदा सक्षम है।

अतएव साकारवादियोंको निराकारवादियोंके निकट ईश्वरको साकार प्रमाणित करनेमें तनिक भी कष्ट नहीं उठाना पड़ता है। भारतमें शैलेन घोषालकी तो बात ही क्या उनसे अनन्त गुण शिक्षित, तार्किक पण्डित निराकारवादी नास्तिक हुए हैं, वर्तमान है और होंगे, परन्तु उनकी लेखनी और जिह्वा सर्वतोभावेन स्तब्धीभूत हुई है, हो रही है, और आगे भी होगी। प्रायः २००० वर्षोंसे ईसाइ लोग तथा १४०० वर्षोंसे मुसलमान लोग भारतीय वैदिक और पौराणिक विचार धारा पर लगातार आक्रमण करते चले आ रहे हैं, परन्तु आजतक वे भारतीय वैदिक और पौराणिक विचारधाराका एक बाल भी बाँका करनेमें समर्थ नहीं हो सके हैं।

मंदिरकी आवश्यकता किनके लिये ?

मैंने पहले ही कहा है कि मठकी स्थापना होनेसे यहाँ श्रीविग्रहका होना नितांत आवश्यक है। श्रीविग्रहके लिये ही मंदिरकी आवश्यकता है। जो लोग विग्रह नहीं मानते, उनको मंदिरकी आवश्यकता क्या है? उनको मंदिरकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। परन्तु साधकोंके लिये सारे धर्मोंमें उपासना-गृह निर्माण करनेकी व्यवस्था है। उस उपासना गृहको कोई गिर्जाघर या चर्च, कोई मस्जिद, कोई अखाड़ा, कोई हरिसभागृह, मठ, मंदिर और आश्रम आदि

नामों से पुकारते हैं । नानक-पंथी उपासना-गृहको 'गुरुद्वारा' कहते हैं। इस उपासना-गृहके बीचोबीचमें ग्रन्थ-साहबको रखकर पूजा होती है । कोई-कोई इनकी ऐसी पूजा-पद्धतिको हिन्दुओंकी 'भगवानके शाब्दिक अवतारकी' पूजाका अनुकरण मानते हैं; परन्तु हिन्दुओंकी वैसी पूजा और नानक पंथी-पूजामें प्रकाश और अन्धकारका भेद विद्यमान है। वैष्णव लोग श्रीमद्भागवतकी पूजा करते हैं । आसाम प्रदेशीय शंकरदेवके सम्प्रदायमें भी भागवतकी पूजा होती है, परन्तु उनका पूज्य भागवत वेदव्यास द्वारा रचित मूल भागवत नहीं—शंकरदेव द्वारा श्रीमद्भागवतका अनुवाद-ग्रन्थ है। परन्तु नित्यविग्रह को अस्वीकार करनेके कारण इनकी उपासना साकार-वादकी श्रेणीमें स्वीकृत होने पर भी वास्तवमें निराकारवादकी ही प्रतिच्छवि है । सिख सम्प्रदायके लोग हाथोंमें पताकाएँ लेकर कीर्त्तन करते हुए ग्रन्थ-साहेब की परिक्रमा करते हैं। यह उनका दैनन्दिन कार्यक्रम है। पुनः कीर्त्तन द्वारा ग्रन्थ साहेबको भोग-निवेदन कर वे सभी लोग प्रसाद पाते हैं। यदि नानक-पंथियों में ऐसी उपासना प्रचलित है, तब शैलेन घोषालको हिन्दुओंकी उपासना और पूजा-पद्धतिके प्रति कटाक्ष करनेका कोई कारण नहीं दीख पड़ता। (क्रमशः)

मनुष्यके कुकर्म भगवानकी लीला नहीं है

एक प्रसिद्ध स्वामीजीसे दिल्लीके एक प्रमुख चिकित्सक महोदयने यह पूछा—'मनुष्य दुःख क्यों भोगता है ? यदि सभी जीव भगवान (?) हैं—जैसा आप बतला रहे हैं—तो भगवान् क्यों इतना दुःख भोगते हैं ? तब तो भगवान् भी बड़े दुःखी है ?' स्वामीजीने उत्तर दिया—'यह सब भगवान् की लीला है ।' चिकित्सक महोदयने पुनः प्रश्न किया—'यदि यह सब भगवानकी लीला है, तब कर्म-फलका अर्थ क्या है ? क्या भगवान् भी कभी कर्म-फलके अधीन होते हैं ?' इस प्रकार कुछ देर तक परस्पर प्रश्न और उत्तरका क्रम चलता रहा, परन्तु स्वामीजी अपने उत्तरसे चिकित्सक महोदयकी शंका दूर नहीं कर सके । उस दिन स्वामीजीके ज्ञानका पर्दा फाश हो गया था ।

बहुधा बहुतसे सज्जन ऐसे-ऐसे प्रश्न करते सुने जाते हैं। बात यह है कि 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' (जीव ही ब्रह्म हैं)—ऐसा माननेवाले अद्वैतवादी यदि जीवोंके कर्मफलरूप दुःख-भोगको भगवान्की लीला न कहें, तो जीवात्मा और परमात्मा भिन्न-भिन्न हो पड़ेंगे और उनके अद्वैतवादकी गाड़ी उलट पड़ेगी। अतएव उपरोक्त स्वमीजी डाक्टर साहेबको कोई दूसरा उत्तर न दे सके। परन्तु इस अस्वाभाविक उत्तरसे भला किसी भी बुद्धिमान व्यक्तिको संतोष कैसे हो सकता है ?

सच्चिदानन्द आदि पुरुष भगवान्का नाम है—लीला पुरुषोत्तम। अर्थात् वे उत्तम पुरुष सदा-सर्वदा आनन्द चिन्मय रसकी लीलाका उपभोग करते हैं। ऐसे लीलापुरुषोत्तम भगवान्की लीला और अपने कर्मफलका भोग करनेवाले जीवोंके दुराचारको एक मानना कितना भयंकर अपराध है, असुर-स्वभाववाले व्यक्तियोंके दिमागमें यह प्रवेश नहीं करता। वेदान्त सूत्रमें भगवान् पुरुषोत्तमके लिये 'आनन्दमयोऽभ्यासात्' सूत्र कहा गया है। परतत्त्वको निर्विशेष मानने वाले अद्वैतवादी उक्त सूत्रकी मनमाने ढङ्गसे तरह-तरहसे टीका और व्याख्या करके भी इस बातका सामंजस्य करनेमें सर्वथा असफल रहे हैं कि निर्विशेष ब्रह्म आनन्दका उपभोग कैसे कर सकता है ? इस प्रकार आनन्दमय ब्रह्मको निर्विशेष ब्रह्म सिद्ध करनेकी उनकी सारी चेष्टाएँ व्यर्थ हुई हैं।

आनन्द एक ऐसी चीज है, जो निर्विशेष वस्तुमें

कदापि सिद्ध नहीं है। जब तक विशेषता न हो तब तक वहाँ आनन्दकी स्थिति स्वीकृत नहीं हो सकती। मायावादियोंके ब्रह्म निर्विशेष हैं, अतएव मायावादियों के ब्रह्म आनन्दमय कैसे हो सकते हैं? श्रुतियोंमें सर्वत्र ब्रह्मको आनन्दमय कहा गया है। मायावादी इन वाक्योंका सामंजस्य नहीं कर पाते। अँग्रेजीमें भी एक कहावत है—'Variety is the mother of enjoyment' अर्थात् विचित्रता ही (विशेषता ही) आनन्द प्राप्तिका एकमात्र उपाय है। लोग बड़े-बड़े शहरोंमें जाते हैं। किसलिये, आनन्दके लिये। यदि बड़े बड़े शहर निराकार, निर्विशेष रेतीके मैदान होते तो वैसे शहरोंमें और तो क्या, कोई निराकारवादी स्वामीजी भी तथाकथित यज्ञानुष्ठान आदिके लिये नहीं पधारेंगे। स्वामीजी लोग अधिकतर ऐसे स्थानोंमें ही पधारनेकी कृपा करते हैं, जहाँके सारे पदार्थ साकार होते हैं, जहाँ विभिन्न प्रकारकी विशेषताएँ मौजूद रहती हैं और जहाँ भौतिक रूप, रस, गंध, स्पर्श और सुहावने शब्द आदि इन्द्रिय तृप्तिकर विषयोंकी अधिकता होती है। लोग शहरोंमें जाते हैं, परन्तु जनशून्य आनन्दरहित रेगिस्तानोंमें क्यों नहीं जाते? क्या रेगिस्तानोंमें जगहकी कमी होती है? नहीं, बात यह है कि शहरोंमें भौतिक सुख-भोगके सारे प्रसाधन मौजूद रहते हैं—सुन्दर-सुन्दर पथ, भव्य-भवन, सजी-सजायी दूकानें, सिनेमागृह, नयी डिजाइनोंके ट्राम, बस, रेल, एयरोप्लैन आदि यान-वाहन, सुहावने पार्क, सङ्गीत, व्यापार, नौकरी, इच्छानुसार खाने-पीनेकी चीजें एवं मनोरञ्जनकी और भी सारी वस्तुएँ—यह सब कुछ शहरमें उपलब्ध है। मनुष्य क्या चाहता है? इसका केवल एक उत्तर है—आनन्द। परम ब्रह्म आनन्दमय है। परब्रह्मका अंश होनेके कारण जीवात्मामें भी आनन्दकी चाह स्वाभाविक है। परन्तु निर्विशेषवादियोंके कुसङ्गके प्रभावसे वह भगवान्के चिद्विलास और चिन्मय आनन्दको अस्वीकार कर जड़ानन्दका भोग करते करते परेशान हो जाता है और इस परेशानी ही को भगवानकी लीला मान कर चिदानन्दसे वंचित हो जाता है। अँग्रेज कवि काउपर (Cowper) महोदयने कहा है, 'गाँव—ईश्वरके बनाये हुए हैं और शहर—मनुष्योंके'। तात्पर्य यह कि आनन्दकी विशेषता देहात और शहर दोनोंमें है; परन्तु गाँवका आनन्द निर्मल और अकृत्रिम होता है एवं शहरका आनन्द कृत्रिम और विकृत होता है। ठीक उसी प्रकार ब्रह्मका आनन्द विशुद्ध चिदानन्द होता है। इसलिये ब्रह्म सविशेष हैं, निर्विशेष नहीं। निर्विशेष निराकारवादियोंका अनुभव निर्मल न होनेके कारण वे चिन्मय विशेषताओंको—चिन्मय नाम, रूप, गुण और लीलाको भी मायिक मानने लगते हैं।

निरपेक्ष रूपसे विवेचन करने पर यह पता चलता है कि आनन्दका भी तारतम्य है। विद्वान् पुरुषोंका आनन्द शराबियोंके आनन्दसे भिन्न होता है। शराबके नशेमें चूर शराबियोंकी बेसिर-पैरकी बातें और सांसारिक भोगोंसे विरक्त महात्माओंकी परस्पर हरि-लीला-कथाओंकी चर्चा—'बोधयन्तं परस्परं', एक चीज नहीं। उसी प्रकार लीला-पुरुषोत्तमकी चिन्मय आनन्दसे पूर्ण सविशेषता—अप्राकृत लीला और जड़विलासी मायावादीकी जड़ानन्दरूप मायिक विशेषता—सांसारिक दुःख-सुख भोग—एक चीज नहीं हैं। माया द्वारा अपहृत-ज्ञानवाले, असुर स्वभाव विशिष्ट मायावादी इन बातोंको नहीं समझ सकते। इतना ही नहीं वे लोग अन्तमें भगवानको हटाकर (अस्वीकार कर) स्वयं भगवान् बन बैठते हैं तथा सबको धोखा देते हैं। त्रिकालज्ञ वेदव्यास भविष्यकी बात सोचकर इन लोगोंसे सावधान करनेके लिये ही वेदान्त-सूत्रकी रचना कर स्वयं उसका भाष्य भी लिख गये हैं, जिसका नाम है—श्रीमद्भागवत। "भाष्योऽयं ब्रह्मसूत्राणां।"

बड़े-बड़े निराकारवादी स्वामीजी लोग जनशून्य स्थानोंका परित्याग कर जगत्मिथ्याका उपदेश देनेके लिये बड़े-बड़े शहरोंमें जो पधारते हैं उसका मूल कारण भौतिक रूप, रस आदिका आस्वादन ही जान पड़ता है। प्राकृत भोगोंसे रहित बनका सात्विक भाव

जिनको रुचिकर नहीं होता, राजसिक भोगैश्वर्य ही जिनको प्रिय हैं, वे भला त्रिगुणातीत कैसे हो सकते हैं ? क्या यही उनके निर्गुण पदकी प्राप्तिका लक्षण है ? जिनमें सात्विक गुणोंका भी अभाव है, वह निर्गुण अवस्था नहीं प्राप्त कर सकता है। त्रिगुणातीत मुक्त महापुरुष ही वैसी अवस्थाके अधिकारी हैं और वैसी स्थिति केवल अनन्य भक्ति द्वारा ही सम्भव है।

माञ्च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्म भूयाय कल्पते॥
(गीता १४।२६)

जो व्यक्ति चिद् विलासको अस्वीकार कर केवल वाक् चातुरीका आश्रय लेकर उदर पूर्त्तिके लिये त्यागी-वेश धारण करते हैं, उनको मायाके जड़ विलासमें अवश्य ही फँसना पड़ता है, चाहे वे जितना भी चिल्लावें कि 'मैं मुक्त हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ' या 'मैं नारायण हूँ'। जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिके अधीन रहकर भला कोई मुक्त कैसे हो सकता है ? यह बात असम्भव है। शुष्क नेति-नेति विचार परायण ज्ञानी लोग अनेकानेक जन्मोंके पश्चात् भगवान् वासुदेवके शरणागत होते हैं—'बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।' और तब कहीं मुक्त होते हैं। वासुदेवके चरणोंमें शरण लिये बिना कोई भी मुक्त नहीं हो सकता। परन्तु मायावादी हठपूर्वक जड़ीय विशेषोंको निर्विशेष बतलाते बतलाते अंतमें वास्तविक वस्तुको भी निर्विशेष बतलानेकी धृष्टता करने लगते हैं। इतना ही नहीं, वे मायिक विलासको—सुख-दुःखको भगवान्की लीला बतलाते हैं। उनके विचारसे मायिक-तत्त्व परतत्त्वसे सर्वथा भिन्न है। परन्तु वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। मायिक-तत्त्व परतत्त्वकी छाया है। जिस प्रकार सिनेमागृहका चलचित्र असल खेलकी एक विपरीत प्रतिच्छवि मात्र है। यदि असल खेल निराकार हो तो उसकी प्रतिच्छवि कदापि साकार नहीं होती। प्रतिच्छवि कहनेका तात्पर्य है—असल खेल कहीं और है। जड़ जगत—चिज्जगतकी छायामात्र है।

अतएव सिद्धान्त यह है कि निरवच्छिन्न आनन्द चिद्विलास भगवान्में ही है। उसके अतिरिक्त जो कुछ दिखलाई पड़ता है, वह सब कुछ चिदानन्दकी मायिक छाया मात्र है। मायिक जगत्में ही जलमें काँचबुद्धि, मिट्टीमें जलबुद्धिरूप भ्रम होता है। परन्तु चिज्जगतमें सब कुछ अद्वयज्ञान वस्तु होनेके कारण वैसे भ्रमका तनिक भी अवकाश नहीं है। चिद्विलासका वैशिष्ट्य इतना ही है कि उसमें ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता एक ही वस्तु अर्थात् अद्वयज्ञान तत्त्व है अद्वैतज्ञान—'अद्वयज्ञानका ही मायिक उपलब्धि मात्र है।'

षड्ऐश्वर्यपूर्ण सच्चिदानन्द-विग्रह पुराणपुरुष शाश्वतपुरुष हैं। वे पहले अव्यक्त थे, पीछेसे वे मायिक शरीर धारण कर व्यक्त हुए हैं—साकार हुए हैं, यह मायावादी सिद्धान्त बिलकुल गलत है। चिद्विग्रह भगवान् नित्यकाल साकार हैं; उनमें देह-देहीका भेद नहीं है। जो लोग सच्चिदानन्द विग्रहको मायिक शरीर मानते हैं, उनकी बुद्धि निर्मल नहीं है। ऐसे लोगोंको शास्त्रमें "मूढ़"की संज्ञा दी गयी है। षड्ऐश्वर्यशाली भगवान अपनी अचिन्त्य-शक्तिके प्रभावसे अपनी असंख्य विलास-मूर्त्तियोंको प्रकट कर अपना विस्तार करते हैं। परन्तु इससे उनके मूल रूपका अस्तित्व लुप्त नहीं होता। पूर्णतत्त्व अपनेको पूर्णरूपसे विस्तार करके भी पूर्ण ही रहते हैं। जैसे पिता पुत्र और कन्याके रूपमें अपना विस्तार करके भी स्वयं अपना अस्तित्व सुरक्षित रखता है। मायावादी यह समझते हैं कि जब ब्रह्मने अपना विस्तार कर दिया, तब उनका आकार कहाँ रहा ? परन्तु वे यह समझ नहीं पाते कि मायिक वस्तु ही टुकड़े-टुकड़े होने पर अन्तमें निराकार हो सकती है—परन्तु अचिन्त्यशक्ति सम्पन्न भगवान् सर्वदा ही पूर्ण रहते हैं।

भगवान्की विविध शक्तियोंके परिणाम-स्वरूप चिद् और अचित् सम्पूर्ण विश्व भगवान्से एक ही समय भिन्न और अभिन्न दोनों हैं अर्थात् अचिन्त्यभेदाभेद सम्बन्धयुक्त हैं। यही भगवान्की अचिन्त्यशक्तिका परिचय है। अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न लीला-

पुरुषोत्तम आनन्दमय पुरुष हैं। उन्होंने अपने चिद्विलासको परिपूर्ण रखनेके लिये अपना विविध-प्रकारसे विस्तार किया है। यह उनका स्वाभाविक कार्य है। स्मरण रहे कि भगवानकी यह लीला सर्वथा जड़ातीत है। इसका रहस्य समझ लेना कोई साधारण बात नहीं है। इस लीला-रहस्यको तो वही जान सकता है जिसे स्वयं भगवान् ही कृपा कर जना देते हैं—

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण गदितं मया॥

श्रीमद्भागवत १।६।३०

करुणामय भगवान नारायण ब्रह्माजीको चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश करते हुए कह रहे हैं—मैं विज्ञानसमन्वित रहस्य और तदङ्गयुक्त अपना परम ज्ञान तुमको बतला रहा हूँ, तुम ग्रहण करो। तात्पर्य यह कि भगवत् तत्त्वमें विविध प्रकार की विशेषताएँ विद्यमान हैं और वे विशेषताएँ बड़ी रहस्यपूर्ण हैं। इन विशेषताओंको कोई जीव अपने सीमित भौतिक ज्ञानसे जाननेमें समर्थ नहीं है। उनको तो वही जान सकता है, जिसे भगवान स्वयं कृपा कर जना देते हैं। अतः शरणागत भगवद्भक्त ही विभिन्न प्रकारकी चिद्विशेषताओंसे पूर्ण भगवत्तत्त्वको जानने समर्थ हैं—अन्याभिलाषी, कर्मी और ज्ञानी नहीं। भगवद्विज्ञान अथवा भगवद्दर्शन समझनेके लिये भगवद्गीता ही प्रथम वर्ण-परिचय है। परन्तु इस पारमार्थिक वर्ण परिचय रूपी गीता केवल परम्परागत गुरुदेवकी कृपासे ही समझी जा सकती है। दुर्भागा व्यक्ति गुरुदेवकी कृपाकी अवज्ञा कर अपनी सीमित विद्या-बुद्धि द्वारा उसे समझनेका प्रयत्न करता है, परन्तु उसका सारा परिश्रम विफल हो जाता है।

प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्तिको भगवद्विज्ञानके अनुशीलनमें ही अधिक समय देना कर्त्तव्य है; क्योंकि मनुष्य जीवनका चरम उद्देश है—तत्त्व-जिज्ञासा। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन सबका सम्बन्ध मायासे है। भगवद्दर्शन या भगवद्विज्ञान ही अकेला मायासे परे है। धर्मकी सार्थकता अर्थ-प्राप्तिमें नहीं है, अर्थ केवल धर्मके लिये है। धर्म-पथमें रह कर जिविका निर्वाहोपयोगी अर्थोपार्जन करना चाहिए, परन्तु शरीर-रक्षाके नाम पर भोग-विलास अथवा इन्द्रियों को तृप्त करना कर्त्तव्य नहीं है। ऐसा करना पाप है। इस विषयमें मेरा पृथक लेख "पापका परिचय" जो पहले प्रकाशित हो चुका है—पठनीय है। जीवन-निर्वाहका तात्पर्य है—तत्त्व जिज्ञासु होना। जो लोग मनुष्य जीवन लाभ कर भी तत्त्व-जिज्ञासु नहीं होते, वे जीवित रहकर भी मृतकके समान हैं। तत्त्व-जिज्ञासा का तात्पर्य है—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् का यथार्थ तत्त्व जाननेके लिये तत्त्वविद् पुरुषोंसे श्रद्धापूर्वक पूछना। मनुष्य जीवनका एकमात्र और चरमफल तत्त्व-ज्ञानकी प्राप्ति ही है।

भौतिक शरीरमात्र दुःखदायी होता है। यों तो मनुष्य शरीरमें भी बहुतसे दुःख है, परन्तु दूसरे शरीरमें तो और भी अधिक दुःख हैं। हरेक बुद्धिमान मनुष्य यह सहज ही अनुभव कर सकता है कि भौतिक शरीर कितना दुःख-प्रद है। आत्मज्ञानी पुरुष इस मनुष्य शरीरके रहते हुए भी दुःखोंसे सर्वथा अतीत होते हैं। देहात्मबुद्धि वाले (शरीर को आत्मा माननेवाले) सर्वदा दुखी रहते हैं। आधुनिक बड़ी-बड़ी योजनाओंके निर्माणकर्ता कहते हैं—हम तरह-तरहकी क्रान्तिकारी योजनाओंके द्वारा संसारको पूर्णसुखमय बना लेंगे। परन्तु बड़े-बड़े योजनानिर्माता आये और चले गये, परन्तु आजतक सांसारिक अभाव और दुःख ज्यों-के-त्यों हैं, अधिकन्तु और भी नयी-नयी समस्याएँ पैदा हो गयी हैं। हमें इस विषयपर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

भगवान आनन्दस्वरूप हैं; अतएव उनकी लीला कभी दुःखदायी नहीं हो सकती। बद्धजीवोंका दुःख-भोग भगवानकी लीला नहीं हो सकती। भगवान्की लीलाएँ गुणोंसे अतीत और प्राकृत-विधानोंसे परे होती हैं।

जीवकी दुःख प्राप्तिका कारण उनकी क्षुद्र

स्वतंत्रताका अपव्यवहार करना है। भगवत्सेवाके लिये जीवको एक प्रकारसे स्वतंत्रता दी गयी है। जीव उस स्वतंत्रताका अपव्यवहार कर अपने इन्द्रिय-सुखके लिये जभी उसका प्रयोग करते हैं,उसी समय वे जड़ा प्रकृतिके परतंत्र हो जाते हैं। इसी परतंत्रताका दूसरा नाम बद्धावस्था है। इस परतंत्रतासे छुटकारा प्राप्त होनेका नाम ही मुक्ति है। मुक्तिका तात्पर्य पुनः भगवत्सेवाको प्राप्त करना है। भगवत्सेवामें सदा-सर्वदा लगे रहने वाले जीव शरीरके रहते भी जीवन्मुक्त हैं।

उपरोक्त स्वामीजी अपनेको अद्वैतवादी मानते हैं; उनके लिये जीवात्मा और परमात्मा एक ही हैं। अतएव मनुष्यका दुःख भोगना—परमात्माका ही दुःख भोगना है। परन्तु परमात्माका दुःख-भोग अयुक्तिसंगत एवं शास्त्र-विरुद्ध है। इस दोषसे साक्षात रूपमें बचनेके लिये वे लोग मनुष्यके दुःख-भोगको परमेश्वरकी मायिक लीला (?) बतलाकर कन्नीकाट कर बच निकलना चाहते हैं। इस प्रकार धोखेकी बात कहना स्वामीजीके लिये स्वाभाविक है। जीवात्माका दुःख भोगना दैवी मायाके अधीन कार्य है, उसका भगवानकी लीलासे कोई सम्बन्ध नहीं है।

(क्रमशः)

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त स्वामी महाराज

जैव-धर्म

[गतांकसे आगे]

प्रमेयके अन्तर्गत नामापराध विचार

विजय—'प्रभो! कृपा कर शुद्धनामका लक्षण और भी स्पष्ट रूप में बतलाइये, जिससे हमलोग सरलतापूर्वक समझ सकें।'

बाबाजी—'अन्याभिलाषसे रहित और ज्ञान-कर्म आदिके आच्छादनोंसे शून्य अनुकूल भावके साथ नाम ग्रहण करनेसे शुद्ध नाम होता है। नामके चिन्मय भावको स्पष्टरूपमें प्रकटकर परमानन्द अनुभव करनेकी अभिलाषा अन्याभिलाष नहीं है। इसके अतिरिक्त नामके द्वारा पाप दूर करना अथवा मोक्ष प्राप्त करना आदि समस्त प्रकारकी वासनाओं को ही 'अन्याभिलाष' कहते हैं। अन्याभिलाष रहने से नाम शुद्ध नहीं होता। ज्ञान, कर्म, योग आदि साधनोंके द्वारा उनसे पाये जानेवाले फलोंकी आशा का भी जबतक परित्याग न किया जाय, तबतक 'शुद्धनाम' नहीं होता। प्रतिकूल-भावोंको हृदयसे निकालकर केवल नामके अनुकूल प्रवृत्तिके साथ जो नाम ग्रहण किया जाता है, उसे 'शुद्धनाम' कहते हैं। भक्तिके इन लक्षणोंको दृष्टिमें रखकर विचार करनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि नामापराध और नामाभासरहित नाम ही शुद्धनाम हैं। अतएव कलियुग पावनावतारी श्रीगौरचन्द्रने कहा है—

> तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
> अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥

अर्थात् जो अपनेको तृणसे भी दीन-हीन समझते हैं, जो वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु होते हैं, स्वयं मान पानेकी अभिलाषा नहीं रखते और दूसरों को मान देते हैं, वे ही सदा-सर्वदा श्रीहरिनाम संकीर्त्तनके अधिकारी हैं।'

विजय—'प्रभो! नामाभास और नामापराधमें स्वरूपतः क्या भेद है?'

बाबाजी—'शुद्धनाम न होने पर उसे नामाभास कहते हैं। वह नामाभास किसी अवस्थामें 'नामा-

भास' कहलाता है और किसी अवस्थामें 'नामा-पराध'। जब अज्ञानवश अर्थात् भ्रम-प्रमादवश अशुद्ध नाम होता है, तब उसे 'नामाभास' कहते हैं और जब मायावाद आदिके कारण भोग और मोक्ष के लिये अशुद्ध नाम होता है, तब उसे नामापराध कहते हैं। जिन दस प्रकारके अपराधोंको मैंने पहले बतलाया है, ये यदि सरल अज्ञतासे होते हैं, तब ऐसी दशामें लिया गया अशुद्ध नाम नामापराध नहीं, नामाभास होता है। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि नामाभासमें जबतक नामापराधके लक्षण नहीं हैं, तबतक यह आशा रहती है कि नामाभास दूर हो जायगा और शुद्धनाम उदय होगा; परन्तु नामापराध होने पर नामोदय होना बड़ा ही कठिन हो जाता है। मैंने नामापराध दूर करनेके लिये जो विधि बतलायी है, उसके अतिरिक्त किसी भी उपाय द्वारा कल्याण नहीं हो सकता है।'

विजय—'नामाभास करनेवाले मनुष्यको क्या करना चाहिये, जिससे उसका नामाभास 'शुद्धनाम' हो सके?'

बाबाजी—'शुद्धभक्तोंका संग करना उचित है। शुद्धभक्तोंके साथ रह कर उनके आदेश और निर्देशके अनुसार नाम करनेसे शुद्धभक्तिमें रुचि होती है; उस समय साधककी रसना पर जो 'नाम' आविर्भूत होते हैं, वे शुद्धनाम होते हैं। साथ ही नामापराधी व्यक्तियोंका सङ्ग यत्नपूर्वक त्याग करना आवश्यक है। क्योंकि नामापराधियोंके संगमें रहनेसे शुद्ध नामका उदय नहीं होता। सत्सङ्ग ही जीवके कल्याणका एकमात्र हेतु है। इसीलिये प्राणेश्वर श्रीगौराङ्गदेवने सनातन गोस्वामीको यह उपदेश दिया था—'सत्संग ही भक्तिका मूल है; योषित (स्त्री) सङ्ग और अभक्त सङ्ग, इन दोनोंका सर्वथा त्यागकर सत्सङ्गमें कृष्णनाम करो।'

विजय—'प्रभो! क्या अपनी स्त्रीका त्याग किये बिना साधक शुद्धनाम नहीं कर सकता?'

बाबाजी—'स्त्री-संग छोड़ना ही कर्त्तव्य है। गृहस्थ-वैष्णव अपनी विवाहिता स्त्रीके साथ अनासक्त भावसे रह कर वैष्णव संसारकी समृद्धि करते हैं। ऐसे संगको स्त्री-संग नहीं कहते। स्त्रीके प्रति पुरुषकी आसक्ति तथा पुरुषके प्रति स्त्रीकी आसक्तिका नाम ही 'योषित-संग' है। इसी आसक्तिका त्यागकर गृहस्थ व्यक्ति यदि कृष्णनाम ग्रहण करें, तो वे निश्चय ही परम पुरुषार्थ प्राप्त कर सकते हैं।'

विजय—'नामाभास कितने प्रकारके होते हैं?'

बाबाजी—'श्रीमद्भागवतमें नामाभास चार प्रकार के बतलाये गये हैं—

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठ-नाम-ग्रहणमशेषाघ-हरं विदुः॥ (क)

नाम-तत्त्व और सम्बन्ध तत्त्वसे अनभिज्ञ व्यक्ति चार प्रकारसे नामाभास करते हैं (१) संकेत द्वारा, (२) परिहास द्वारा, (३) स्तोभ द्वारा, (४) अवहेला द्वारा।'

विजय—'सांकेत्य-नामाभास किसे कहते हैं?'

बाबाजी—'अन्य वस्तुको लक्ष्यकर भगवान्का जो नाम उच्चरित होता है, उसे सांकेत्य नामाभास कहते हैं। जैसे—अजामिलने मरनेके समय अपने पुत्र नारायणको पुकारा। भगवान् कृष्णका नाम भी नारायण है। इसलिये अजामिलका 'नारायण'नाम—सांकेत्य-नामाभास हुआ था। म्लेच्छ लोग शूकरको देखनेसे 'हाराम', 'हाराम' कहकर घृणा प्रकाश करते हैं। 'हाराम'-शब्दमें 'हा राम' दो शब्द हैं; अतएव 'हाराम' शब्दके उच्चारणकारी भी इस सांकेत्य-नाम-को ग्रहण करनेके फलस्वरूप जन्म-मृत्युके चक्करसे छुटकारा पा लेते हैं। नामाभाससे मुक्ति होती है—

(क) संकेत (दूसरी वस्तुको लक्ष्यकर भगवन्नाम उच्चारण), परिहास (उपहास पूर्वक नामोच्चारण), स्तोभ (असम्मानपूर्वक नामोच्चारण) और हेला (अनादरपूर्वक नामोच्चारण)—ये चार छायानामाभास हैं। पण्डितजन वैसे नामाभासको अशेष पाप-नाशक जानते हैं।

इसे समस्त शास्त्र स्वीकार करते हैं। नामाक्षरोंके साथ मुकुन्द (मुक्तिदाता भगवान्) का सम्बन्ध दृढ़रूपमें ओत-प्रोत है। इसलिये नाम उच्चारण करनेसे भगवान् मुकुन्दका स्पर्श हो जाता है और उस स्पर्शसे अनायास ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है। जो मुक्ति ब्रह्मज्ञानके द्वारा अनेक कष्टसे पायी जाती है, वही मुक्ति नामाभासके द्वारा बिना परिश्रमके अनायास ही सभी लोग पा जाते हैं।'

विजय—'प्रभो! व्यर्थ ही अपने पाण्डित्यका अभिमान करनेवाले मुमुक्षु (मुक्ति चाहनेवाले), तत्त्वज्ञान रहित म्लेच्छगण तथा परमार्थ-विरोधी असुर लोग परिहास (हँसी-मजाक उपहासके रूपमें) कृष्णनामका उच्चारण कर मुक्ति प्राप्त किये है—हमने ऐसा शास्त्रोंमें अनेकानेक स्थानोंमें पढ़ा है; कृपया स्तोभ-नामाभासके सम्बन्धमें बतलाइये।'

बाबाजी—'दूसरोंको कृष्णनाम करनेमें बाधा देते समय असम्मानपूर्वक जो नाम उच्चारण हो पड़ता है, उसे 'स्तोभ' कहते हैं। एक शुद्ध-वैष्णव हरिनाम उच्चारण कर रहे हैं। उसी समय एक पाषण्ड व्यक्ति उसे देख कर चिढ़ जाता है और मुख टेढ़ा कर कहता है—'तुम्हारे हरि-केस्ट सब कुछ कर लेंगे!'—यही स्तोभका उदाहरण है। इस स्तोभ-नाम से उस पाषण्डकी मुक्ति तक हो सकती है—नामाक्षर की ऐसी स्वाभाविकी शक्ति है।'

विजय—'हेला-नामाभास किसे कहते हैं?'

बाबाजी—'अनादरपूर्वक नाम-ग्रहण करनेको हेला-नामाभास कहते हैं।' प्रभासखण्डमें अनादर-पूर्वक नाम ग्रहणका भी फल संसारसे उद्धार होना बतलाया गया है—

मधुरं मधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां
सकल-निगम-वल्ली-सत्फलं चित् स्वरूपम्।
लकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा
भृगुवर 'नरमात्रं तारयेत्' कृष्णनाम॥ (क)

इस श्लोकमें 'श्रद्धया'-शब्दका अर्थ है—आदर-पूर्वक, और 'हेलया' का—अनादरपूर्वक। 'नरमात्र तारयत्'—इस वाक्यका तात्पर्य यह है कि कृष्णनाम मुसलमानोंको भी मुक्ति प्रदान करते हैं।'

विजय—'अवहेलासे नाम करना क्या अपराध नहीं है?'

बाबाजी—'जान-बूझकर अलत् उद्देश्यसे अव-हेला होने पर अपराध होता है; परन्तु अज्ञतापूर्वक हेला होनेपर नामाभास होता है।'

विजय—'नामाभासका फल क्या होता है एवं नामाभाससे क्या-क्या नहीं हो सकता है?'

बाबाजी—'नामाभाससे सभी प्रकारके भोग-सुख, मुक्ति एवं अष्ट प्रकारकी सिद्धियाँ, यह सब कुछ पाया जा सकता है; परन्तु उससे कृष्ण-प्रेम रूप परमपुरुषार्थ नहीं पाया जा सकता है। किन्तु नामा-भासी असत्सङ्ग छोड़ कर शुद्ध भक्तोंका यदि निरन्तर सङ्ग करे और उनके उपदेशोंका नियमित रूपमें पालन करे तो वह शीघ्र ही मध्यम वैष्णव बन जाता है और कुछ ही दिनोंमें शुद्ध भक्ति लाभ कर कृष्ण-प्रेम प्राप्त कर लेता है।'

विजय—'प्रभो! बहुतसे वैष्णव वैष्णवाभास चिह्न धारण कर निरन्तर नामाभास करते हैं, परन्तु अनेक दिनों तक ऐसा करने पर भी वे प्रेम लाभ नहीं कर पाते, इसका कारण क्या है?'

बाबाजी—'इसमें एक रहस्य है। वह यह है कि वैष्णवाभास साधक शुद्धभक्तिको पानेके योग्य होने पर भी अनन्य भक्तिके अभावमें वह साधु मानकर जिसका संग करते हैं, वह व्यक्ति यदि शुद्ध भक्त न होकर मायावादी हुआ, तो उसके कुसंगसे साधक मायावादके अपसिद्धान्तोंकी शिक्षा करता है, जिससे उसकी रही-सही भक्तिका आभास भी दूर हो जाता है और क्रमशः वैष्णवापराधी तथा नामापराधीकी श्रेणीमें गिर पड़ता है। ऐसी दशामें उसका कल्याण

(क) हे भृगुवर! यह कृष्णनाम मधुर से भी सुमधुर है, समस्त प्रकारके मङ्गलोंका भी मङ्गल स्वरूप है तथा निखिल श्रुति-समूह रूपी लताका सुमधुर और सुपक्व फल है। इस चैतन्यस्वरूप तारक ब्रह्म श्रीकृष्णनामका एकबार भी श्रद्धा अथवा अवहेलापूर्वक ही क्यों न हो, कीर्त्तन करनेसे उक्त कृष्णनाम मनुष्य मात्रका उद्धार कर देते हैं।

होना कठिन ही नहीं असम्भव सा हो जाता है। हाँ, यदि उसकी पूर्व-सुकृति प्रबल हो तो वह सुकृति ही उसे कुसङ्गसे हटा कर सत्सङ्गमें पहुँचा देती है और सत्सङ्गमें पुनः उसे शुद्ध वैष्णवता प्राप्त होती है।'

बाबाजी—'पंचमहापापको करोड़ गुणा करनेसे जो पाप-राशि होती है उससे भी नामापराध अधिक भयंकर होता है। अतएव नामापराधका फल सहज ही अनुमान कर सकते हो।'

विजय—'प्रभो! नामापराधका फल बड़ा ही भयंकर होता है, समझ गया, परन्तु नामापराधके समय जो नामाक्षर उच्चरित होते हैं, उनका क्या कुछ भी अच्छा फल नहीं होता?'

बाबाजी—'नामापराधी जिस फलकी आकांक्षा कर नामोच्चारण करते हैं, 'नाम' उसे वही फल प्रदान करते हैं। परन्तु उसे कृष्णप्रेमरूप फल नहीं प्रदान करते। साथ ही साथ उस नामापराधीको अपने नामापराधका फल भी भोगना पड़ता है। नामापराधी शठतापूर्वक जो नाम लेते हैं, उसका फल इस प्रकार होता है—नामापराधी प्रायः शठतापूर्वक (धूर्ततापूर्वक) नाम ग्रहण करते हैं, परन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि शठता शून्य नाम भी बीच-बीचमें उनका हो पड़ता है। उनका यह शठताशून्य नामोच्चारण सुकृतिके रूपमें एकत्रित होता है। धीरे-धीरे वह सुकृति कुछ अधिक होने पर उसके प्रभावसे शुद्धनाम ग्रहणकारी सन्तोंका सङ्ग प्राप्त हो जाता है। सत्सङ्गके प्रभावसे नामापराधी निरन्तर नाम उच्चारण करते-नामापराधसे छुटकारा पा जाता है। इस प्रणालीका अवलम्बन कर बड़े-बड़े मुमुक्षु (मुक्तिकी कामना रखनेवाले) भी क्रमशः हरिभक्त हुए हैं।'

विजय—'यदि एक नाम ही समस्त पापोंको हरण करनेमें समर्थ है, तब निरन्तर (तैलधारावत) नामकी आवश्यकता क्या है?'

बाबाजी—'नामापराधियोंका अन्तःकरण और व्यवहार सर्वथा और सर्वदा दुषित होता है। वे स्वभावतः बहिर्मुख होते हैं। अतएव साधु-व्यक्ति, साधु-वस्तु और सत्कालके प्रति उनकी रुचि नहीं होती। कुपात्रमें, कुसिद्धान्तमें तथा कुकार्योंमें उनकी नैसर्गिक रुचि होती है। निरन्तर नामोच्चारणसे उनको असत्सङ्ग और असत्कर्मके लिये समय नहीं मिलता। अतएव कुसङ्ग न होनेके कारण नाम क्रमशः शुद्ध होकर सद्-विषयमें उसकी रुचि प्रदान करते हैं।'

विजय—'प्रभो! आपके मुखसे श्रीनाम तत्त्वका अमृत-प्रवाह निकल कर हमारे कर्ण-पथसे होकर हृदय में प्रवेश कर हमें नामप्रेम-रससे उन्मत्त कर रहा है। आज हम नाम, नामाभास और नामापराधको पृथक्-पृथक् भलीभाँति जान कर कृतार्थ हुए। इतना कह कर वे व्रजनाथके सहित बाबाजीको दण्डवत प्रणाम कर हरिनाम कीर्त्तन करते घर लौटे।

❀ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ❀

उपनिषद् वाणी

कठोपनिषद्

(पूर्व प्रकाशित वर्ष ५, संख्या ४, पृष्ठ ३२ से आगे)

यमराजने जीवात्मा और परमात्माके नित्य सम्बन्धका परिचय देते हुए कहा—ब्रह्मज्ञ महापुरुष तथा यज्ञादि शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले सज्जन—सभी लोग एक स्वरसे कहते हैं कि यह मनुष्य शरीर बड़ा ही दुर्लभ है। पूर्वजन्मार्जित पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप जीवको नित्यकल्याणके साधन के लिये ही मनुष्य शरीर मिलता है। परमात्मा जीवात्माके हृदयमें अन्तर्यामीके रूपमें सर्वदा निवास करते हैं। जीवात्मा अपने किये हुए कर्मोंका फल भोग करता है; परमात्मा असंग और अभोक्ता है। परमात्मा ही जीवोंको कर्मफल भोग कराता है। जीवात्मा फल-भोगके सम्बन्धमें असङ्ग नहीं रहता। वह कर्त्तापनके अभिमानके कारण सुख-दुःखादि भोग करनेके लिये बाध्य है। इसलिये जीवात्मा और परमात्माकी तुलना छाया और धूपके साथ दी गयी है।

परमात्माको जानने और प्राप्त करनेका सर्वोत्तम साधन यह है कि साधकको भगवानसे यह प्रार्थना करनी चाहिए कि वे उसे ऐसी शक्ति प्रदान करें जिससे वह निष्काम भावसे यज्ञादि शुभकर्मोंका अनुष्ठान कर उन्हें प्रसन्न कर सके और उनकी कृपासे उनको प्राप्त हो सके और उनको जान सके।

जीवात्मा परमात्माके निकट रह कर भी उनका दर्शन नहीं कर पाता। वह अनन्त कालसे परमात्मासे विमुख होकर शरीर रूपी रथ पर चढ़कर अपनेको भोक्ता मान कर संसार-पथ पर इधर उधर भटक रहा है। जिस रथ पर वह चढ़ा हुआ है, उसमें इन्द्रियाँ घोड़े हैं, मन लगाम है, और बुद्धि सारथी है। वह भोगोंके द्वारा मोहित होकर परमात्माकी ओर अग्रसर न होकर क्रमशः भोगोंकी ओर ही तीव्र गतिसे भागता जा रहा है। उसके घोड़े अर्थात् इन्द्रियाँ सर्वदा प्राकृत रूप, रस, गन्ध शब्द और स्पर्शकी ओर ही भागते हैं।

घोड़ोंको ठीक ठीक रास्ते पर चलानेके लिये सारथीका बुद्धिमान और सचेत होना आवश्यक है। विवेक हीन अतत्त्वज्ञ जीवका असावधान सारथी इन्द्रियरूपी बलवान और दुर्धर्ष घोड़ोंको उचित ढंगसे संचालन नहीं कर पाता। अतः वे मनमाने घोड़े (अवशीभूत इन्द्रियाँ) अपात रमणीय विषयों की तरफ ही दौड़ते रहते हैं। परन्तु विवेकी और तत्त्वज्ञानी जीवकी वशीभूत इन्द्रियाँ साधवान बुद्धिरूप सारथी द्वारा चालित होकर निर्दिष्ट मार्गसे चल कर परम मङ्गलमय परमधाम रूप गन्तव्य स्थानको पहुँचा देती हैं। जिसकी बुद्धि कर्त्तव्याकर्त्तव्य विवेकसे रहित होती है और मन निग्रहरहित होता है, उसकी इन्द्रियाँ निरन्तर दुराचारमें प्रवृत्त रहती हैं, उस मनुष्यका जीवन कभी पवित्र नहीं रह पाता। इसलिये वह पुनः पुनः संसार चक्रमें ही भटकता हुआ नीच जन्मोंको प्राप्त होता रहता है; वह परम पद प्राप्त नहीं कर पाता। परन्तु जो स्वयं सावधान होकर अपनी बुद्धिको निरन्तर विवेकशील बनाये रखता है और जिसका मन भी विवेक शील बुद्धिके द्वारा परिचालित हुआ करता है, वही परमपदको प्राप्त होता है। तात्पर्य यह कि कर्त्तव्य परायण विवेकी व्यक्ति अपनी बुद्धिसे यथार्थ कर्मका रहस्य जानकर सत्कर्मोंका अनुष्ठान कर संसार-सागरको

पार कर परमेश्वरके परम धामको प्राप्त होनेकी योग्यता प्राप्त करता है एवं वहाँ पहुँचकर पुनः संसार में लौटता नहीं है।

मनुष्य शरीर अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्य शरीर प्राप्त कर उसे अनित्य और अशुभ कर्मोंमें न लगा कर भगवद्भजनमें नियुक्त करनेसे नित्यसुखमय परम धामकी प्राप्ति होती है। इन्द्रियोंको विषयोंमें लगाने से दुष्ट मन इस अमूल्य जीवनको विषय-भोगके चिन्तनमें ही नष्ट कर डालता है। इसलिये सत्सङ्गमें अपना स्वरूप-तत्त्व जानकर भगवत्सेवामें ही मनुष्य जीवनको लगाना चाहिए। यही यथार्थ बुद्धिमान पुरुषोंका कर्त्तव्य है।

इन्द्रियाँ विषयोंकी ओर आकर्षित होती हैं, इस-लिये इन्द्रियोंसे उनके विषय सूक्ष्म और श्रेष्ठ हैं; मन इच्छा करनेसे विषयोंमें लग सकता है और नहीं भी लग सकता है, इसलिये विषयोंसे मन श्रेष्ठ है; बुद्धि मनको परिचालित करती है,इसलिये वह मनसे भी श्रेष्ठ है; और आत्म-सबका स्वामी होनेके कारण सबसे श्रेष्ठ है। इस आत्माको माया आकर्षित करती है; अतएव माया (प्रकृति) आत्मसे भी बलवान है। और इस प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ हैं—परम पुरुष परमेश्वर। बुद्धिमान मनुष्यको इन्हीं परमपुरुष पर-मेश्वरकी शरण लेना कर्त्तव्य है। वही सर्वशक्तियों के आश्रय हैं और सबके चरम गति हैं। वे ही समस्त वस्तुओंकी पराकाष्ठा और उत्तम गति हैं। ये परमेश्वर मायाके परदे द्वारा अपनेको छिपाकर सबकी हृदयरूपी गुफामें स्थित हैं। जीव स्वयं इस माया-रूपी परदेको हटाकर परमेश्वरका दर्शन करनेमें अस-मर्थ है। जो जीव भगवानके चरणकमलोंमें शरण ले लेता है, वह भगवानकी ही कृपासे उनका (भग-वान का) दर्शन प्राप्त कर लेता है। अतः बुद्धिमान मनुष्यका कर्त्तव्य यह है कि वह पहले वाक आदि इन्द्रियोंको बाह्य विषयोंसे हटाकर उन्हें मनमें स्थिर करे दे, जिससे मनकी क्रिया बाह्य विषयोंसे हटकर क्रमशः बुद्धि और अन्तमें आत्माके प्रति नियुक्त हो जाय। तात्पर्य यह कि इन्द्रियों द्वारा विषय-भोग या विषय-चिन्तन न कर उन्हें भगवत्सेवामें लगा कर पुरुषोत्तमकी कृपासे परमपदको प्राप्त होना ही मनुष्य जीवनका चरम फल है।

हे मनुष्यों! जागो, उठो। तुम जन्म-जन्मान्तरसे अज्ञान निद्रामें सो रहे हो; शीघ्र उठो। श्रेष्ठ महापुरुषको आचार्यके रूपमें वरण कर उठो। आत्म तत्त्व बड़ा ही गहन है। आचार्यके उपदेशके बिना स्वयं उसका अनुभव कर अज्ञान-निद्रासे जग उठना असम्भव है। यह संसार मार्ग बड़ा ही दुस्तर है। जिस प्रकार छुरेकी तेज धार थोड़ा सा असावधान होनेसे ही शरीरको काट सकता है, उसी प्रकार संसार-मार्ग पर असावधान होकर चलनेसे दुःख-ही-दुःख प्राप्त होता है। अतएव आचार्यके उपदेशोंका अनुसरण कर यथार्थ-पथमें भगवान्का भजन करना ही बुद्धिमान मनुष्यका कर्त्तव्य है। सांसारिक विषयों को ग्रहण करनेवाली इन्द्रियाँ परमात्माकी ओर नहीं चलतीं। परमात्मा प्राकृत विषय—शब्द, स्पर्श, रूप,रस और गन्ध आदिसे परे हैं। वे अविनाशी अनादि और असीम हैं। वे जीवात्मासे भी श्रेष्ठ और नित्य वर्त्तमान हैं। उन्हें जानकर जीव सदाके लिये जन्म-मरणसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

विधाताने बद्धजीवोंकी मुख बाहरकी ओर बनाया है। इसलिये वे बाहरी विषयोंके प्रति ही आकृष्ट होती हैं। विवेकके अभावमें अधिकांश मनुष्य आपात-रमणीय, किन्तु परिणाममें दुःखदायक विषयोंमें ही फँसे रहते हैं। कोई विरला बुद्धिमान मनुष्य ही भगवान्की कृपासे विषय भोगोंको दुःख-स्वरूप जानकर अपनी इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर परमात्माकी ओर लगते हैं। जो लोग बाहरी विषयों-की आपात-रमणीयतासे मुग्ध होकर विषय-भोगोंको भोगनेमें ही अपना अमूल्य जीवन बीताते हैं, वे मूर्ख हैं। वे मृत्युके पाशमें बँधकर नानाप्रकारकी नीच योनियोंमें भटकते रहते हैं। परन्तु बुद्धिमान

मनुष्य अमृत-स्वरूप परमात्म-तत्त्वको जानकर उसे प्राप्त करनेके लिये सर्वतोभावसे साधनमें तत्परतासे लग जाते हैं । बुद्धिमान मनुष्य रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श, एवं मैथुन आदि विषय भोगोंको अनित्य, क्षणभंगुर और परिणाममें दुखदायी जानकर इनमें आसक्त न होकर परम नित्य वस्तु—भगवान्‌की सेवामें नियुक्त रहना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं । वे परमेश्वरको सबका जीवन प्रदान करनेवाला तथा उनके कर्मोंका फल प्रदान करनेवाला जानकर कभी किसीकी निन्दा नहीं करते या किसीसे भी घृणा नहीं करते । वे अनुभव करते हैं कि परमेश्वर ही सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदिका कारण हैं, नित्य हैं तथा अपने संकल्पसे ही पंचभूत आदिकी सृष्टिकर समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें विराजमान हैं । सर्वदेवतामयी अदिति देवी (माया शक्ति) परमब्रह्मके संकल्पके अनुसार सब जगतकी जीवनी शक्ति के रूपमें समस्त प्राणियोंके बीजके सहित प्रकट होती हैं । वे जीवोंके हृदयगुहामें स्थित परमात्मासे अभिन्न तत्त्व हैं । हे नचिकेता । यह वही ब्रह्म हैं जिनके सम्बन्धमें तुमने पूछा था । वे समस्त देवताओंका सृजन करनेवाली होनेके कारण सर्वदेवमयी हैं एवं समस्त वस्तुओंका अदन—भक्षण करनेवाली अर्थात् नाश करनेवाली होनेके कारण अदिति कहलाती हैं । हिरण्यगर्भ आदि समस्त भूतप्राणियोंका प्रकाश इसी महाशक्तिसे ही हुआ करता है ।

जिस प्रकार गर्भिणी स्त्रीके द्वारा अन्न-पानादिसे पुष्ट होकर बालक गर्भमें छिपा रहता है और प्रसवकाल उपस्थित होनेपर प्रकट होता है, उसी प्रकार अधर और उत्तर अरणि (यज्ञकाष्ठ) के अन्दर अग्निदेवता छिपे रहते हैं एवं मन्थन द्वारा आत्म प्रकाश कर आज्यादि विविध हवनसामग्रियोंको ग्रहण करते हैं । ये अग्निदेवता ही तुम्हारे पूछे हुए ब्रह्मके ही प्रतीक हैं ।

जिन परमेश्वरसे सूर्यदेव प्रकट होते हैं और अन्तमें जिनमें विलीन हो जाते हैं, उन परमेश्वरमें ही समस्त देवता अवस्थित हैं । ऐसा कोई भी नहीं है जो परमेश्वरकी महिमा और व्यवस्थाका उल्लंघन कर सके । सर्वतोभावसे सभी उनके अधीन और उन्हींके अनुशासनमें रहते हैं । कोई भी उनकी महिमाका पार नहीं पा सकता । वे सर्वशक्तिमान परब्रह्म पुरुषोत्तम ही तुम्हारे पूछे हुए ब्रह्म हैं । वे सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सर्वरूप, सबके परमकारण परब्रह्म पुरुषोत्तम इस पृथ्वीमें, परलोकमें, देवादि गन्धर्वलोकोंमें तथा अखिल ब्रह्माण्डमें सर्वत्र विराजमान हैं । जो मोहवश उनमें नानात्वकी कल्पना करता है, वह पुनः पुनः मृत्युको प्राप्त होता रहता है अर्थात् उसके जन्म-मृत्युका चक्र चलता रहता है । वे सर्वव्यापी, सर्वनियंता सर्वशक्तिमान एवं त्रिकाल सत्य पुरुषोत्तम समस्त प्राणियोंके हृदय-क्षेत्रमें अंगुष्ठमात्र परिमाणके रूपमें स्थित हैं । क्योंकि मनुष्यका हृदय अंगुष्ठमात्रका कहा गया है और केवल मनुष्य शरीर ही परमेश्वरको उपलब्धि करनेके योग्य बतलाया गया है,इसलिये परमेश्वरको मनुष्यके हृदय-क्षेत्रके परिमाणके अनुसार अंगुष्ठ मात्ररूपमें स्थित कहा गया है । इस प्रकार परमेश्वरको दर्शन करनेवाला किसीकी निन्दा नहीं करता अथवा किसीसे घृणा नहीं करता । वे परमात्म-पुरुष ज्योतिर्मय, दिव्य, नित्य निर्मल और शान्त प्रकाश-स्वरूप हैं । लौकिक अग्नि आदि ज्योतियोंमें धूम्ररूप दोष होता है; परन्तु वे धूम्ररहित सर्वथा विशुद्ध हैं । वे ही भूत, भविष्य और वर्त्तमान तीनोंकालोंमें सबके नियामक या शासक हैं । (क्रमशः)

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ,
कंसटीला, मथुरा (उ० प्र०)
१७ अक्टूबर, १९५९

सादर निवेदन

आदरणीय महोदय,

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके **श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें** आगामी १४ कार्त्तिक, १ नवम्बर रविवारको **श्रीश्रीगुरुगौरांग-राधाविनोद विहारीजीका अन्नकूट महोत्सव** एवं **श्रीश्रीगोवर्द्धन-पूजाका** अनुष्ठान होगा।

अतः धर्म-प्राण सज्जनोंसे अनुरोध है कि आप महानुभाव तन मन, वचन और धन द्वारा सहायता एवं स्वयं योगदान कर उक्त महदनुष्ठानको सब प्रकारसे सफल बनाकर हमें उत्साहित करें तथा भक्ति-उन्मुखी सुकृति अर्जन करें।

निवेदक :—
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके सभ्यवृन्द

❀ कार्य-क्रम ❀

मंगलारति एवं संकीर्त्तन—प्रातः ४॥ बजे से ८ बजे तक
श्रीचैतन्यचरितामृतसे अन्नकूट-प्रसंग पाठ—८ बजे से १० बजे तक
श्रीगोवर्द्धनपूजा—पूर्वाह्न १० बजे से १२ बजे तक
श्रीअन्नकूट महोत्सव दर्शन—३ बजे से ७ बजे शाम तक
संध्यारति, संकीर्त्तन, भाषण—७ बजे से ९ बजे रात तक

श्रीश्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें श्रीश्रीउर्जाव्रत (कार्त्तिक-व्रत)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति इस वर्ष श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीप (बङ्गाल) में पिछले २९ आश्विन, १६ अक्टूबर शुक्रवारसे श्रीश्रीउर्जव्रत (कार्त्तिक-व्रत) की नियम-सेवाका पालन कर रही है। समितिके प्रतिष्ठाता एवं आचार्य परमहंस मुकुट-मणि परिव्राजकाचार्य १०८ श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजी बहुतसे संन्यासी, ब्रह्मचारी एवं सज्जन मण्डलीके साथ १६ अक्टूबरको उक्त मठमें पधारे हैं। प्रतिदिन श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंका प्रवचन, संकीर्त्तन, वेद-वेदान्त और पुराणोंके पारङ्गत बड़े-बड़े विद्वान संतोंके भाषण आदिका सुन्दर कार्यक्रम चल रहा है। यह अनुष्ठान आगामी २८ कार्त्तिक १५ नवम्बर, रविवार तक चलता रहेगा।

स्मरण रहे कि इस वर्ष कार्त्तिक-व्रतके उपलक्ष्य-में समिति द्वारा सम्पूर्ण गौड़-मण्डलकी परिक्रमाका विराट आयोजन चल रहा था; परन्तु बंगालमें इसी समय अचानक प्रलयकारी बाढ़के विनाशकारी खेलके कारण यह आयोजन बन्द कर देना पड़ा है। परन्तु नियम सेवाका कार्यक्रम नियमित रूपसे चल रहा है।

तत्त्व-परिचय

मानव जीवन अत्यन्त दुर्लभ और अस्थिर है। किस दिन मृत्यु आ जायगी कुछ कहा नहीं जा सकता है।

बालकपनमें ईश्वरका साधन नहीं हो सकता, इस प्रकार सोचना अनुचित है। हम लोग इतिहासोंमें देखते हैं कि ध्रुव, प्रह्लादने अत्यन्त शैशवावस्थामें ही ईश्वरकी कृपा प्राप्त की थी। जब एक मनुष्य कोई काम कर सकता है तो इसमें सन्देह नहीं है कि मानव-जाति भी उस कामको कर सकती है। विशेषतः जिस कामके करनेका अभ्यास शुरू ही से किया जाता है वह स्वभावरूप हो जाता है।

परमेश्वरकी प्रसन्नताके लिए अवस्था भेदसे जो यत्न करते हैं उसके चार कारण देखे जाते हैं—भय, आशा, कर्त्तव्य-बुद्धि और राग।

नरकभय, अर्थाभाव, पीड़ा और मृत्युभयसे जो परमेश्वरका भजन करता है, वह भय द्वारा उत्तेजित होकर ईश्वर आराधन करता है। जो संसारमें उन्नति लाभके लिये और विषय-सुखका प्रार्थी होकर ईश्वर भजन करता है, वह आशा द्वारा उत्तेजित होकर ईश्वर भजन करता है। किन्तु ईश्वर-साधनामें इतना पवित्र सुख है कि शुरूमें भय और आशासे भी किया हुआ साधनभी अन्तमें अनेक भय और आशा से छुड़ाकर शुद्ध-भजनमें अनुरक्त करा लेता है।

जो सृष्टिकर्त्ताके प्रति कृतज्ञताके कारण उसकी उपासना करते हैं, वे कर्त्तव्य-बुद्धि द्वारा चालित होकर उस काममें प्रवृत होते हैं। परन्तु जो लोग भय, आशा और कर्त्तव्य-बुद्धि द्वारा चालित नहीं होकर स्वभावसे ही ईश्वर साधनमें प्रेम करते हैं वे लोग राग द्वारा साधनमें प्रवृत होते हैं।

किसी एक विषयको देखनेके लिये ही जब चित्त उसके प्रति प्रवृत्ति द्वारा बिना विचार किये दौड़ता है, तो उसीको राग कहते हैं। यही प्रवृत्ति जब परमेश्वरकी चिन्ता करने मात्र से ही किसी के चित्त में उत्पन्न होती है तब वह राग द्वारा ईश्वर-भजन करता है।

भय, आशा और कर्त्तव्य-बुद्धि द्वारा जो उपासक भजनमें प्रवृत होते हैं उनका भजन विशुद्ध नहीं है। राग मार्ग द्वारा जो ईश्वर भजनमें प्रवृत होते हैं, वे ही यथार्थ साधक हैं।

जीव और ईश्वरमें एक निगूढ़ सम्बन्ध है। राग के उदय होनेसे उसके सम्बन्धका परिचय मिलता है। वही सम्बन्ध नित्य है, किन्तु जड़बद्ध जीवके लिये यह गुप्तरूपसे रहता है सुविधा पाकर ही यह प्रकाशित हो जाता है; दियासलाई घिसनेसे अथवा चकमकी झाड़ने से जैसे अग्निका प्रकाश होता है, उसी तरह साधन करनेसे यह सम्बन्ध प्रकाशित हो जाता है।

भय, आशा और कर्त्तव्य-बुद्धिसे भजन करते-करते बहुतेरोंको यह सम्बन्ध प्रकाशित हो गया है। ध्रुवने पहले राज्य प्राप्तिकी आशासे ही हरिभजन किया था, किन्तु साधनके द्वारा हृदयमें पवित्र-सम्बन्ध-जनित रागके उदय हो जानेसे उसने सांसारिक सुख-जनक वरदान ग्रहण नहीं किया।

भय और आशा नितान्त हेय हैं। साधककी जब अच्छी बुद्धि होती है, उस समय वह भय और आशा का परित्याग करता है और कर्त्तव्य-बुद्धि ही उसका एकमात्र आश्रय हो जाता है। परमेश्वरके प्रति रागका जबतक उदय नहीं होता है तबतक कर्त्तव्य-बुद्धिका परित्याग नहीं करना चाहिये। कर्त्तव्य-बुद्धिसे विधिका सम्मान और अविधिका परित्याग इन्हीं दोनों विचारों का उदय होता है।

पहले-पहले महापुरुषोंने परमेश्वरके निमित्त साधन करनेके लिए जिन सब पद्धतियोंको विचार कर संस्थापित किया है और शास्त्रोंमें लिपिबद्ध किया है, उन्हीं सबका नाम विधि है। कर्त्तव्यबुद्धिके शासन होनेसे ही शास्त्रका शासन और विधिका आदर हो जाता है।

देश-देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तरके मनुष्यों के इतिहास और वृत्तान्तोंकी आलोचना करनेसे स्पष्ट प्रतीत होगा कि ईश्वरमें विश्वास मनुष्यका साधारण धर्म है। असभ्य लोग वनके रहनेवाले पशुओंका मांस खाकर समय बिताते हैं, तथापि सूर्य, चन्द्र और बड़े २ पर्वतों, बड़ी २ नदियों एवं बड़े २ वृक्षोंको दण्डवत् प्रणाम करते हैं और उनको दाता-नियंता कहकर पूजा करते हैं, इसका कारण क्या है?

जीव नितान्त बद्ध होकर भी जहाँ तक उसका चेतन आच्छादित नहीं होता है, वहाँ तक चेतन धर्मके परिचय स्वरूप कुछ-कुछ ईश्वर विश्वास अवश्य ही प्रकाशित करता है।

सभ्यावस्था प्राप्त करके जब वह नाना प्रकारकी विद्याओंकी आलोचना करता है उस समय कुतर्कोंके द्वारा इस ईश्वर विश्वासको दबाकर नास्तिकता एवं अभेदवादके अन्तर्गत निर्वाणवादको मनमें स्थान देता है।

यह कुत्सित विश्वास जीवकी अस्वस्थताका लक्षण है, ऐसा ही समझना चाहिए। नितान्त असभ्य अवस्था और ईश्वर विश्वासकी उपयोगी अवस्थाओंके बीच मानव जीवनकी तीन अवस्थाएँ आवान्तर रूपमें लक्षित होती हैं।

इन तीन अवस्थाओंसे ही नास्तिक्यवाद, जड़वाद, सन्देहवाद और निर्वाणवाद रूप पीड़ाएँ जीवकी उन्नतिके प्रतिबन्धक रूपसे बहुतोंको दुर्गतिकी ओर ले जाती हैं।

ऐसी बात नहीं है कि सभी मनुष्य इन अवस्थाओं में उपरोक्त रोगोंसे रोगी हो जाते हैं, बल्कि बात यह है कि जो लोग इन सब रोगोंसे अक्रान्त हैं वे उन्हीं अवस्थाओंमें बँधे रहकर उच्च जीवनके अधिकारसे वञ्चित रह जाते हैं।

असभ्य मानव सभ्यता, नीति और विद्यानैपुण्यके बलसे अति शीघ्र ही वर्णाश्रम रूप धर्मका अवलम्बन करके ईश्वर भक्तिके साध्योपयोगी भक्त जीवन लाभ कर लेते हैं। यही मानव जातिकी नैसर्गिक अवस्था है।

मनुष्योंने भिन्न २ द्वीपोंमें रहकर भिन्न २ प्रकृतिका अवलम्बन किया है। परन्तु मनुष्योंकी मुख्य प्रकृति सब जगह एक ही है। गौण प्रकृति अवश्य ही भिन्न-भिन्न है। मनुष्यकी मुख्य-प्रकृति एक होने पर भी जगतमें एक प्रकारके ऐसे दो व्यक्ति नहीं पाये जाते जिनमें गौण प्रकृति एक-सी हो।

जब एक गर्भसे जन्म ग्रहण करके दो भाइयोंकी आकृति-प्रकृति एक प्रकारकी नहीं होती है, तो किस प्रकार भिन्न देशकी जलवायुमें पैदा हुए मनुष्य एक प्रकारके हो सकते हैं। भिन्न-भिन्न देशकी जलवायु, पर्वत, वनादि, खान-पान, वेश-भूषा, आहारादि भिन्न २ प्रकारके हैं। इसी कारणसे उन देशोंके रहनेवाले मनुष्योंकी आकृति, वर्ण, व्यवहार, पहिरावा, भोजन, निःसर्गवश भिन्न २ होते हैं। देश विशेषका मनोभाव भी पृथक होता है और उनके अन्तर्गत ईश्वर भाव मुख्यांशमें एक प्रकारका होने पर भी गौणांशमें भिन्न २ प्रकारका होता है।

इस प्रकार देश-विदेशमें जिस समय असभ्य अवस्था लांघ कर मनुष्योंको क्रमशः सभ्य अवस्था, वैज्ञानिक अवस्था, नैतिकअवस्था और भक्तावस्था प्राप्त होती है उसी समय क्रमशः भाषाभेद, परिच्छेदभेद, भोज्य भेद और मनोभाव भेदसे ईश्वरभजनकी प्रणाली भी भिन्न २ हो जाती है।

निरपेक्ष होकर विचारनेसे मालूम होगा कि इस प्रकारके गौण भेद-समूहोंसे कोई नुकसान नहीं है। मुख्य भजन विषयमें ऐक्य रहनेसे फलके समय कोई दोष नहीं होता। अतएव श्रीमन्महाप्रभुकी विशेष

आज्ञा है कि विशुद्ध सत्त्वस्वरूप भगवानका भजन करो, किन्तु सामान्य भजन-प्रणालीकी निन्दा करनी नहीं चाहिए।

उपरोक्त कारणोंसे भिन्न २ देशोंके लोगोंके चलाए हुए धर्मोंके नीचे लिखे हुए पाँच भेद हैं :—

[१] आचार्य भेद।
[२] उपासककी मनोवृत्ति और भजन अनुभव भेद।
[३] उपासनाकी प्रणाली भेद।
[४] उपास्य-तत्त्वके सम्बन्धमें भाव और क्रिया भेद।
[५] भाषा भेदके अनुसार नाम और वाक्यादि भेद।

आचार्य भेदसे किसी देशमें ऋषि लोगोंका, किसी-किसी देशमें महम्मद साहबके ऐसे प्रचारक लोगोंका; किसी देशमें क्राईस्ट जैसे धर्मात्माओंका और देश-विदेशमेंबहुतेरे विद्वानोंका विशेष सम्मान होते देखा जाता है।

इन आचार्योंको यथायोग्य सम्मान करना उनके देशवासियोंका कर्त्तव्य है, परन्तु अपने देशके आचार्यों की शिक्षाको दूसरोंसे, निष्ठाके कारण, श्रेष्ठ समझने पर भी दूसरे देशमें इस प्रकारके विवादजनक प्रतिष्ठा-का प्रचार करना उचित नहीं है। ऐसा करनेसे जगत-का कुछ भी मङ्गल नहीं होगा।

उपासकोंकी मनोवृति और भजन अनुभव भेद द्वारा किसी देशमें आसन पर बैठ कर न्यास प्राणायाम इत्यादि प्रक्रियाओंके द्वारा भजन किया जाता है। कहीं पर मुक्त कच्छ होकर अपने मुख्य मन्दिरकी ओर मुख करके खड़े होकर गिरकर दिन-रातमें पाँचवार उपासना करते हैं। कहीं पर हाथ जोड़कर दीनता प्रकाश कर ईश्वरका यशोगान करके भजन मन्दिरमें वा अपने घरमें ही पूजा करते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकारके वस्त्र व भोग व्यवहारोंके द्वारा शुद्धता और अशुद्धताके साथ पूजा करनेकी स्थानीय विधि देखी जाती है। भिन्न-भिन्न धर्म्मोंकी उपासना देखने-से उपासना-प्रणालीके भेद देखे जाते हैं।

भिन्न-भिन्न धर्मोंमें उपास्यतत्त्वके सम्बन्धमें भाव और क्रिया भेद देखे जाते हैं। कोई-कोई चित्तमें भक्तिपरिप्लुत होकर आत्मामें मन और जगतमें परमेश्वरकी प्रति-छविरूप श्रीमूर्तिका संस्थापन करते हैं और उससे तदाम्य बोध द्वारा पूजा करते हैं। किसी-किसी धर्ममें अधिकतर तर्क द्वारा मन ही मन एक ईश्वर भावका गठन कर उसीके द्वारा उपासना करते हैं। प्रतिमूर्त्तिको स्वीकार नहीं करते। किन्तु वास्तवमें यदि देखा जाय तो सभी प्रतिमूर्त्ति है।

भाषा भेदके अनुसार कोई-कोई किसी-किसी विशेष नामसे ईश्वरको पुकारते हैं। धर्मोंका भिन्न-भिन्न नाम दिया हुआ है। भजनके समयमें भिन्न-भिन्न वाक्य बोले जाते हैं। इन भेदोंके कारण जगत-में भिन्न-भिन्न धर्म-समूह आपसमें एक दूसरेसे अत्यन्त पृथक् हो गये हैं, यह बात नैसर्गिक है, किन्तु इन पार्थक्योंके कारण परस्पर विवाद करना नितान्त अन्याय और हानिकारक है। दूसरोंके भजनके समय-उनके भजन मन्दिरमें उपस्थित रहने पर ऐसा व्यवहार करना चाहिये और इस दृष्टिकोणसे देखना चाहिये कि हमारे उपास्यदेवकी एक भिन्न प्रकारसे पूजा की जा रही है। हम अपने अभ्यासवश इस प्रस्तुत प्रणालीके द्वारा पूजा करनेमें असमर्थ हैं, किन्तु इसके देखनेसे अपनी भजन प्रणालीमें अधिकतर भावोदय हो रहा है।

स्मरण रहे, परमतत्त्व एक ही है, दो नहीं। यहाँ पर जो ईश्वर चिन्ह देख रहा हूँ वह मेरे ही ईश्वरका है और इस प्रकार प्रार्थना करना चाहिये कि हे मेरे आराध्यदेव! मेरा प्रेम आप बढ़ावे।

जो इस प्रकार व्यवहार नहीं करके भिन्न प्रणालियों के प्रति द्वेष, हिंसा असूया वा निन्दा करते हैं, वे नितान्त असार और हतबुद्धि है। वे अपने परम प्रयोजनकी उतनी पर्वाह नहीं करते जितना दूसरेसे विवाद करनेकी।

इसमें केवल एक बात विचारणीय है । भजन प्रणालीभेदकी निन्दा करना असारता है, किन्तु यदि उसमें कोई प्रकृतदोष देखा जाय तो उसका आदर नहीं करना चाहिये बल्कि जहाँ तक हो सदुपायसे उसको दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए इससे जीव का मंगल होगा । यही कारण था कि महाप्रभु ने बौद्ध, जैन, और निर्विशेषवादियोंके साथ विचार करके उन लोगोंको सत्पथ पर लाने का उद्योग किया था । प्रभुका समस्त चरित्र प्रभु भक्तों के लिए आदर्श स्वरूप होना ही उचित है ।

जिस धर्म्ममें नास्तिकवाद; सन्देहवाद, स्वभाववाद, आत्मवाद, और निर्विशेषवाद आदि अनर्थ हैं भक्त लोग उन धर्म्मोंको धर्म्म नहीं कहते । बल्कि उनको विधर्म्म, छलधर्म्म, धर्म्माभास वा अधर्म्म मानते हैं । जहाँ तक हो सके इन सबोंसे जीवकी रक्षा करनी चाहिए ।

विमल प्रेम ही जीवका नित्यधर्म्म है । उपरोक्त पाँच प्रकारके भेद देखे जाने पर भी धर्म्मका असली उद्देश्य विमल प्रेम ही है । वही धर्म्म धर्म्म है । बाह्य भेद लेकर वितर्क करना अनुचित है । धर्म्मका उद्देश्य यदि विमल है तो सब कुछ सद्लक्षण युक्त है । नास्तिकवाद, सन्देहवाद, बहुईश्वरवाद, जड़वाद, अनात्मवाद अर्थात् कर्मवाद स्वभाववाद और निर्विशेषवाद स्वभावतः प्रेमके विरोधी हैं ।

कृष्ण प्रेम ही विमल प्रेम है । प्रेमका धर्म्म ही है कि वह किसी एक तत्त्व का आश्रय लेकर ही रहता है एवं किसी एक तत्त्वको विषय कहकर वरण करता है । विषय और आश्रयको छोड़ देनेसे प्रेम का परिचय नहीं रहता । जीवका हृदय ही प्रेमका आश्रय है और एकमात्र कृष्ण ही प्रेमके विषय हैं । पूर्ण विमल प्रेम उदित होने ही से उपास्यवस्तुका ब्रह्मत्व, ईश्वरत्व, नारायणत्व श्रीकृष्ण स्वरूपमें लीन हो जाते हैं ।

कृष्ण नाम सुनते ही जो नाम पर विवाद आरम्भ करते हैं, वे यथार्थतत्वसे वंचित हैं । नामका विवाद निरर्थक है । नाम जिस विषयका उद्देश्य करता है वही जीवके प्राप्त करनेकी वस्तु है ।

सर्व शास्त्र शिरोमणि श्रीमद्भागवतमें जो श्रीकृष्ण-चरितामृत वर्णित है, वह विद्वद्वर श्रीव्यासदेवका साक्षात् समाधि-लब्धतत्व है । नारदके उपदेशसे व्यासदेवने जब भक्तिरूप सहज समाधि अवलम्बन की, तब श्रीकृष्ण स्वरूपका दर्शन करके जिस प्रकारसे उस परम पुरुष कृष्णमें जीवको शोक, मोह, भय नाशिनी अर्थात् उपाधि रहिता भक्ति [प्रेम] प्राप्त हो, ऐसे चरितामृतका वर्णन किया है । श्रीकृष्ण-चरितामृतका पाठ व श्रवण करनेके अधिकार भेदसे जीवको दो प्रकारकी प्रतीति होती है । एकका नाम है विद्वतप्रतीति और दूसरेका अविद्वतप्रतीति ।

भगवान कृष्णके प्रकट कालमें जो कृष्णचरित प्रापञ्चिक चक्षुओंके द्वारा देखा जाता है वह विद्वानोंके लिए विद्वत्प्रतीति और जड़ बुद्धि वालोंके लिए अविद्वतप्रतीति है ।

विद्वतप्रतीति और अविद्वतप्रतीति समझनेकी इच्छा रखनेवालोंको षटसन्दर्भ भागवतामृत, वा कृष्ण संहिताका अच्छी तरह पाठ और उपयुक्त व्यक्ति के निकट आलोचना कर लेनी चाहिए । संक्षेप में समझ लेना चाहिए कि विद्या-शक्तिके द्वारा जो प्रतीति उदित होती है वह विद्वतप्रतीति और अविद्याके आश्रय लेनेसे जो प्रतीति उदित होती है वह अविद्वत प्रतीति है ।

श्रीकृष्णचरितामृत में अविद्वतप्रतीतिसे अनेक विवा उत्पन्न होते हैं । परन्तु विद्वतप्रतीतिमें कोई विवाद नहीं है । जिनको सर्वार्थ लाभकी वासना है वे शीघ्र ही विद्वतप्रतीति प्राप्त कर लेते हैं । अविद्वत-प्रतीति लेकर विवाद करके अपने असली स्वार्थकी हानी क्यों की जाय ?

विद्वतप्रतीतिका थोड़ासा दिग्दर्शन यहाँ पर कराया जाता है । जो लोग जड़ चिन्ताको अतिक्रम करके चित्तत्वके पानेके योग्य हैं उन्हींके लिये विद्वतप्रतीति सम्भव है । वे ही चित्त-चक्षुओंके द्वारा कृष्ण-रूप

का दर्शन करते हैं। वे ही चित्त-कर्णके द्वारा कृष्ण-लीला श्रवण करते हैं और चिद्रस द्वारा वे ही कृष्ण को सर्वतोभावसे आस्वादन करते हैं। सारी कृष्ण लीला ही अप्राकृत और जड़ातीत है। कृष्णकी अचिन्त्य शक्तिके द्वारा वे जड़ चक्षुओंके विषय हो सकते हैं। किन्तु स्वभावतः चक्षु प्रभृति सभी जड़ेन्द्रियाँ उनका साक्षात दर्शन नहीं कर सकती हैं।

श्रीकृष्णके प्रकट समयमें जो समस्त भगवत लीलायें इन्द्रियोंके द्वारा गोचर होती हैं वे भी विद्वतप्रतीतिके बिना वस्तु साक्षातकार रूप फलके देने वाले नहीं होते। अतएव साधारणः अविद्वत प्रतीति ही प्राप्त होती है। इस प्रतीतिके कारण बहुतोंको कृष्णतत्त्व अनित्य ही मालूम होता है। ये लोग कृष्णके शरीरका जन्म,वृद्धि,क्षय आदिकी कल्पना करते हैं। अविद्वत प्रीतीतिके द्वारा निर्विशेष अवस्था सत्य और सविशेष अवस्था प्रापञ्चिक बोध होते हैं और कृष्ण तत्वका विशेषत्व भी प्रापञ्चिक सिद्धान्तित होता है।

परम-तत्व क्या वस्तु है, इसका निर्णय करना बुद्धि का काम नहीं है। अपरिमेय पदार्थमें ससीम नरयुक्ति क्या करसकती है। अतएव जीवकीभक्तिवृतिके द्वारा ही परमतत्त्वका आस्वादन किया जासकता है।

जिसको विमल प्रेम कहते हैं, उसी की प्राथमिक अवस्थाका नाम भक्ति है! कृष्ण-कृपाके बिना विद्वत-प्रतीत उदय नहीं होती। क्योंकि कृष्ण-कृपा से विद्याशक्ति जीवको सहायता करती है।

परमतत्व के जितने प्रकारके भाव जगतमें देखे जाते हैं, उन सबोंसे कृष्णस्वरूप भाव ही विमल प्रेमके लिए एकमात्र अति उपयोगी भाव है। मुसलमान शास्त्र में जो अल्लाह भाव स्थापित है उसमें विमल-प्रेम नियुक्त नहीं हो सकता है।

अति प्रिय बन्धु पैगम्बर भी उसके स्वरूपका साक्षात नहीं कर सके, क्योंकि उपास्यतत्त्व सख्यगत होने पर भी ऐश्वर्य्यके कारण उपासकसे अत्यन्त दूरगततत्त्व रहता है। ब्रह्मकी तो बात ही अलग रहे नारायण भी जीवके सहज प्रेमके पात्र नहीं है। कृष्ण ही एकमात्र विमल-प्रेमके साक्षात विषय हैं और स्वरूपतः चिन्मय ब्रजधाममें नित्य ही विराजमान रहते हैं।

कृष्णका धाम आनन्दमय है। वहाँ ऐश्वर्यके पूर्णरूपसे रहनेपर भी उसका प्रभाव नहीं रहता, वहाँ सभी माधुर्य्यमय और नित्यानन्द-स्वरूप हैं। फल-मूल, किशलय ही वहाँकी सम्पत्ति, गो-धन समूह ही प्रजा, राखालगण ही सखा, गोपीयाँ ही संगिनी, नवनीत, दधि, और दुग्ध ही खाद्य-द्रव्य और कानन और उपवन कृष्ण-प्रेममय हैं। यमुना नदी कृष्ण सेवामें लगी हुई है। समस्त प्रकृति कृष्णकी परिचारिका है।

जो दूसरे जगह ब्रह्मरूपमें सबकी पूजा और सम्मान लेता है, वही इस धामका एकमात्र प्राणधन कभी उपासकके तुल्य कभी उनकी अपेक्षा हीन रूप में देखा जाता है, ऐसा नहीं होनेसे क्या क्षुद्रजीव परमतत्वके साथ प्रेम कर सकता है? जो परमतत्व परमलीलामय, स्वेच्छामय और स्वभावतः जीवके विमल-प्रेम लिप्सु है वह क्या मनुष्योंकी तरह पूजाकी लालसा करता है? क्या वह पूजा द्वारा सन्तुष्ट होकर स्वयं सुख प्राप्त करता है? अपने ऐश्वर्यको माधुर्य्य द्वारा ढक करके परम चमत्कार लीलारस के आधार स्वरूप होकर वह कृष्ण अप्राकृत वृन्दावनमें रसके अधिकारी जीवोंके साथ समता और हीनता स्वीकार करके आनन्द-लाभ करता है।

जो विमल और पूर्णप्रेमको एकमात्र प्रयोजन मानते हैं, वे क्या कृष्णको छोड़कर और किसी दूसरेको उस प्रेमका विषय मानकर वरण कर सकते हैं? यदि भाषाभेदसे कृष्ण वृन्दावन, गोप-गोपी, गो-धन, यमुना, कदम्ब प्रभृति शब्द कहीं पर नहीं भी देखे जाते तो भी विशुद्धप्रेम के साधकोंके लिए उन लक्षणोंसे लक्षित नाम, धाम, उपकरण, रूप और लीला-समूहको प्रकारान्तर या वाक्यान्तरसे अवश्य ही स्वीकार करना होगा। अतएव कृष्णको छोड़कर और कहीं भी विशुद्ध प्रेम नहीं है।